ब्रह्मचर्य महत्वम् - By पं०
मेधाव्रत जी आचार्य.
झज्जर (रोहतक), 2012 Vikram
era.
(4)
1333
4 copies
Bill No. 3/07-08
118
008-0277

ओ३म्

ब्रह्मचर्य महत्वम्

लेखक
श्री पं० मेधाव्रत जी आचार्य कविरत्न

ओ३म्

॥ समर्पणम् ॥

पूज्य स्वामी आत्मानन्द सरस्वती दर्शनाचार्य

नव्यानव्यदुरूहदर्शनविदामाचार्यदेवा वरा-
आत्मानन्दसरस्वतीशयतयो ये ब्रह्मचारीश्वराः ।
तेषां वन्द्यपदारविन्दयुगले सद्ब्रह्मचर्याभिधं
सत्काव्यं कुसुमाञ्जलिः सुकृतिना मेधाव्रतेनार्प्यते ॥

ओ३म्

ब्रह्मचर्य महत्वम्

लेखक

दयानन्ददिग्विजयम्, विरजानन्दचरितम् तथा
तिसौन्दर्यम् आदि अनेक गद्य-पद्य-काव्यों के प्रणेता

श्री पं० मेधाव्रत जी आचार्य कविरत्न

प्रकाशक—
विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय
गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

प्रथम-आवृत्ति १००० सं० २०१२ वि०

मुद्रक—
सम्राट् प्रेस
पहाड़ी धीरज, देहली

प्राक्कथन

बड़े हर्ष का विषय है कि आपके हाथों में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक सौंपी जा रही है जो आवश्यक ही नहीं, अपितु जीवन का एक अङ्ग बन जानी चाहिए। इस पुस्तक के प्रणेता श्री आचार्य मेधाव्रत जी कविरत्न हैं। जो १६ वर्ष पर्यन्त आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा के सफल आचार्य रह चुके हैं। संस्कृत साहित्य की सेवा में आपने अपना जीवन ही अर्पित किया हुआ है यह विद्वन्मण्डली से छुपा नहीं। आप इस "ब्रह्मचर्य-महत्त्वम्" के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य-शतक, प्रकृति-सौन्दर्य, कुमुदिनीचन्द्र, दयानन्द लहरी, दिव्यसंगीतामृत, साहित्य-सुधा दो भाग, ब्रह्मर्षि दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य, उपनिषत् काव्य, नारायण स्वामी चरित, ब्रह्मर्षि-विरजानन्द चरित आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के भी रचयिता हैं। इन गद्य और पद्य ग्रन्थों में आप वही रस अनुभव करेंगे जो महाकवि माघ, भारवि, कालीदास और भवभूति के ग्रन्थों में अब तक करते आये हैं। इसके अतिरिक्त आप इन ग्रथों में अश्लीलता की झलक भी न देख पायेंगे। सरस्वती देवी आपके वश में है कुछ ऐसा प्रतीत होता है। "ब्रह्मचयमहत्त्वम्" ग्रन्थ पर 'यथा नाम तथा गुणः" की लोकोक्ति यथार्थ चरितार्थ होती है। यद्यपि ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अन्य अनेक पुस्तकें भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखी जा चुकी हैं, किन्तु वे ऐसे नव युवकों के लिए जो अभी जीवन के निर्माण की आधार शिला रखने जा रहे हैं, मेरी सम्मति में उपादेय नहीं। जहाँ उनमें भयङ्कर हानिकारक बातों से बचने का निर्देश है, वहाँ निर्दोष

नवयुवकों के बुरे स्वभाव में ग्रस जाने की भी आशंका बनी है। ब्रह्मचर्य सम्बन्ध में जैसा एकत्रित वर्णन अथर्ववेद में है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। यह पुस्तक उसी ब्रह्मचर्य सूक्त के २६ मन्त्रों की लौकिक छन्दों में, जो गान रस का भी आस्वादन करा सके, विश्लेषणात्मक विस्तृत व्याख्या है। इसका प्रणयन ६० वर्ष की परिपक्व अवस्था में समुज्जवल भावों से परिपूर्ण होकर आदित्य ब्रह्मचारी श्री स्वामी व्रतानन्द जी द्वारा स्थापित चित्तौड़ दुर्ग समीपस्थ गुरुकुल की पवित्र भूमि में ही प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त में योगाभ्यासजन्य निर्मल बुद्धि से सर्वथा निर्भ्रान्त होकर किया गया है। ब्रह्मचर्य की महिमा के साथ-साथ मानवगण के ज्ञान की पराकाष्ठा व उसके उपाय भी इस पुस्तक के प्रधान विषय हैं। अन्त में प्राचीन व नवीन ब्रह्मचारियों के हृदयोल्लसित दृष्टान्तों से भी सुसज्जित कर दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं—पुस्तक बहुत गहरा मनन मांगती है।

ब्रह्मचर्य—शतक की भांति इस पुस्तक की भी मुझ पर अच्छी छाप पड़ी। जिससे प्रेरित हो, इतने उच्चकवि की रचना पर टीका करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सब जनता की कृपा का एक प्रसाद है, जिसे अति श्रद्धा से आपके ही अर्पण किया जा रहा है। मुझे आशा है इसका आप हृदय से स्वागत करेंगे।

विनीत

तिथि भाद्रपद शु० ६ सं० २००९ — वेदानन्द "वेदवागीश"

ता० २६—८—१९५२ — स्नातक गुरुकुल चित्तौड़ गढ

मङ्गलवार — (राजस्थान)

स्थान-गुरुकुल चित्तौड़ गढ

ओ३म्

ब्रह्मचर्यमहत्त्वम्

अनुष्टुप्छन्दः

युग्मम्—ब्रह्मणा संप्रणीतानां छन्दसां भावमाहरन् ।
छन्दोभिर्विविधैर्वक्ष्ये लौकिकैरप्यलौकिकम् ॥१॥
कुमारीणां कुमाराणां काव्यं कल्याणकारकम् ।
ब्रह्मचर्यमहत्त्वाख्यं ब्रह्मचारिनिदर्शनम् ॥२॥

अर्थः—परब्रह्म ओ३म् प्रणीत अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के पञ्चमसूक्तगत मन्त्रों का अलौकिक भाव ग्रहण करता हुआ मैं जगत्प्रसिद्ध ब्रह्मचारियों के दृष्टान्तों सहित कुमार कुमारियों के हितार्थ "ब्रह्मचर्य-महत्त्वम्" नामक काव्य का भिन्न-भिन्न लौकिक छन्दों द्वारा प्रणयन करूंगा ।

इन्द्रवज्रा

युग्मम्—ओ३मीश्वरोपासनचिन्तनानि
स्वाध्याय एतद्रचितश्रुतीनाम् ।
वीर्यावनं सत्यसुधारणञ्च
सर्वोन्नतिर्ध्येयनिलीनता च ॥३॥

उपजातिः

ज्ञानाभिवृद्धौ सततं प्रयत्नः
पवित्रतासाधनदक्षता च ।
बुद्धेर्विकासेऽतिशयानुरागः
स ब्रह्मचर्यार्थ उदीरितोऽयम् ॥४।

ब्रह्म	चर्य	अर्थ
(१) ओ३मीश्वरस्य	उपासनचिन्तनानि	ब्रह्म का उपस्थान और ध्यान ।
(२) एतद्रचितश्रुतीनां	स्वाध्यायः	ईश्वर प्रणीत वेदों का अध्ययन ।
(३) वीर्यस्य	अवनम्	वीर्यरक्षा ।
(४) सत्यस्य	सुधारणम्	सत्य का धारण ।
(५) सर्वोन्नतिध्येये	निलीनता	सब की उन्नति में तत्परता ।
(६) ज्ञानाभिवृद्धौ	सततं प्रयत्नः	ज्ञानवर्धन में निरन्तर प्रयत्न ।
(७) पवित्रतायाः	साधन-दक्षता	पवित्रता के उपायों में चातुर्य ।
(८) बुद्धेर्विकासे	अतिशयानुरागः	बुद्धि के विकास में अत्यन्त प्रीति ।

ब्रह्मचर्य शब्द के ये आठ अर्थ कहे गये हैं ।

उपजातिः

उदीरितार्थानुगुणं गुणज्ञो
यो ब्रह्मचर्यं यतते प्रलब्धुम् ।
स ब्रह्मचारी सुतरां चकास्ति
लोकद्वयानन्दसुसिद्धिधारी ॥५॥

अर्थः—कहे गये अर्थानुसार जो विवेकशील जन ब्रह्मचर्य धारणार्थ प्रयत्न करता है, वह ऐहलौकिक व पारलौकिक आनन्द को सिद्ध करने वाला ब्रह्मचारी अत्यन्त प्यमान बन जाता है ।

वसन्ततिलका

यस्यास्ति शीलममलं चरितुं जनस्य
ब्रह्मण्ययं व्रतिवरो गदितो मुनीन्द्रैः ।
ब्रह्मापि वेद इति तत्पठनार्थमीड्यं
योऽयं व्रतं चरति सोऽप्युदितो व्रतीन्द्रः ॥६॥

अर्थः—जिसका ब्रह्म में विचरने का निर्मल स्वभाव है, उस को मुनिवरों ने श्रेष्ठ ब्रह्मचारी कहा है, अथवा ब्रह्म नाम वेद, उसके अध्ययन के लिये जो प्रशंसनीय व्रत धारण करता है उसे भी व्रतीन्द्र कहा गया है ।

मन्त्रः—ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति । स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ (अथर्ववेद ११।५।१)

मन्दाक्रान्ता

ब्रह्मान्विषयन् विचरति दिवि ब्रह्मचारी भुवीव
तस्मिन्देवाः समसुमनसः सानुकूला भवन्ति ।
प्रज्ञाशक्त्या दिवमथ महीञ्चान्तरिक्षं बिभर्त्ति
पूज्याचार्यं प्रखरतपसाऽयं प्रदीप्तः पिपर्ति ॥७॥

अर्थः—जब ब्रह्मचारी द्युस्थानीय प्रकाश के केन्द्र मस्तिष्क में, भूस्थानीय नाभिकेन्द्र में एवं अन्तरिक्षस्थानीय हृदय केन्द्र में ब्रह्म को खोजता हुआ विचरण करता है तब उस ब्रह्मचारी के अन्तःशरीर-चारी प्राण आदि समस्त देव उसके आधीन होकर अनुकूल हो जाते हैं। तदनन्तर वह शरीर पिण्डाधिकारी बन, कारणरूप ब्रह्माण्डस्थ द्युलोक, भूलोक व अन्तरिक्षलोक को धारण करता है एवं अनुकूल बना लेता है। इस प्रकार कठोर तपस्या से अभिवन्दनीय आचार्य की इच्छा को पूर्ण कर उन्हें तृप्त व आनन्दित कर देता है।

देहे देवाननलमरुदाद्यंशभूतान् वशीन्द्रो
वश्यान् कृत्वा लसति तपसान्तर्दधानस्त्रिलोकीम्
बाह्या देवास्तदनुगुणताञ्चाप्य वश्या अवश्यं
सम्पद्यन्ते त्रिभुवनमतो ब्रह्मचारी बिभर्ति ॥८॥

अर्थः—अतिवीर्यवान्, तेजस्वी, आत्मसंयमी, शरीर-पिण्डनियन्ता, जितेन्द्रिय, वशीन्द्र ब्रह्मचारी शरीरस्थ आंशिक अग्नि वायु आदि देवों को वशीभूत करके अपने तपोबल से बुद्धि, स्थूल शरीर व सूक्ष्मप्राण मन रूप

त्रिलोक को वश में करके चमकता है, बाह्य अन्तरिक्षचारी देव अनुकूलता को प्राप्त होकर निःसन्देह वशीभूत हो जाते हैं और वह ब्रह्मचारी तब तीनों द्यु-भू और अन्तरिक्ष लोक को धारण करने वाला हो जाता है।

ब्रह्मान्वेषी चरति स यदा स्वं तपस्तीव्रमस्माद्
दिव्या शक्तिः प्रभवति तदा भूर्भुवःस्वर्विधात्री।
आचार्यं च प्रथिततपसा प्रीणयत्यात्मतेजा
ब्रह्मध्येयं विमलमनसा संभजन् संयमीशः ॥९॥

अर्थः—वह ब्रह्म का अन्वेषक श्रेष्ठ ब्रह्मचारी आत्मशक्ति से देदीप्यमान पवित्र मन से ध्येय रूप ब्रह्म की आराधना करते हुए कठोर तप का अनुष्ठान करता है तब उसको आत्मा से पिण्डस्थ एवं ब्रह्माण्डस्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को धारण करने वाली दिव्यशक्ति प्रकट होती है, एवं इस विख्यात तप से अपने आचार्य को प्रसन्न कर देता है।

मन्त्रः—ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे। गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट्सहस्राःसर्वान्त्स देवान् तपसा पिपर्ति॥ (अथर्व० ११।५।२)

(वसन्ततिलका)

गन्धर्वदेवपितृदेवजनाः पृथक्ते
श्रीब्रह्मचारिणमतोऽनुसरन्ति सर्वे।
त्रिंशत्त्रयस्त्रिशतषष्टिशतानि देवाः
सर्वानमून्त्स तपसा बृहता पिपर्ति ॥१०॥

अर्थः—अतः ये सब छः हजार तीन सौ तैंतीस गन्धर्व-देव-पितर और देवजन नाड़ी नामक देव पृथक् २ रूप से उत्तम ब्रह्मचारी का अनुसरण करते हैं=आधीन हुए पीछे चलते हैं, क्योंकि वह ब्रह्मचारी कठोर तप से इन देवों को संतृप्त करता है।

(शार्दूल०)

प्राणायामतपोभिरुज्ज्वलतराश्चन्द्राग्निसूर्याभिधा
नाडीडाप्रमुखा अवान्तरशिराः प्राणावहाश्चक्रगाः।
मस्तिष्के हृदयेऽथ नाभिवलये व्याप्तास्तनौ तर्पयन्
स्वाधीनास्तनुते य ईशनिरतस्तं ताः कथं नान्वियुः ॥११॥

अर्थः—मस्तिष्क हृदय और नाभि केन्द्र में व्याप्त तथा सप्तचक्रों में गई हुई, प्राणायाम, द्वन्द्वसहन आदि तपों से निर्मल व अत्यन्त उज्ज्वलभूत ६३३३ व इनसे भी अधिक प्राणवाहक चन्द्र, अग्नि, सूर्यनामक इड़ा, सुषुम्णा पिङ्गला नाड़ियों व उपनाड़ियों को शरीर में ही तृप्त कर हुए जो ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी अपने आधीन बना लेता है उसका अनुसरण वे क्यों न करें।

विप्रा देवपदेनोक्ताः क्षत्रियाः पितृसंज्ञया।
वैश्या गन्धर्वनामानः शूद्रा देवजनाख्यया ॥१२॥
अनुसंयन्त्यमी सर्वे ब्रह्मचारिणमानताः।
आत्मानमिव नेतारं कायस्था इव मानवाः ॥१३॥

अर्थः—देव, पितृ, गन्धर्व और देवजन पद से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहे गये हैं। अत्यन्त

विनीत हुए ये सब मानव गण नेता ब्रह्मचारी का वैसे ही अनुगमन करते हैं जैसे शरीरस्थ नाड़ियां आत्मा का।

देहेऽपि रचना तादृक् त्रिलोक्यां यादृगद्भुता।
ब्रह्माण्डपिण्डयोः साम्यं वेधसा विहितं ध्रुवम् ॥१४॥

अर्थः—जैसे भू-अन्तरिक्ष व द्यु लोक में रचना है वैसी ही अद्भुत रचना शरीर में है निश्चय ही इस प्रकार ब्रह्म ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की साम्यता प्रकट की है।

गन्धर्वशक्तयः पृथ्व्या नभसः पितृशक्तयः।
अनुयन्ति द्युदेवाश्च ब्रह्माणं ब्रह्मचारिणम् ॥१५॥

अर्थः—जैसे पृथिवी से धारक, अन्तरिक्ष से रक्षक और द्यु लोक से ज्ञान शक्तियाँ ब्रह्मचारी ब्रह्म का अनुसरण करती हैं ठीक वैसे ही पिण्डस्थ भू-अन्तरिक्ष और द्यु लोक से क्रमशः कर्मेन्द्रिय, मानसेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी का अनुगमन करती हैं।

ब्रह्मचर्यप्रतापेन ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
संतर्पयति संसारं सर्ववर्णैरलंकृतम् ॥१६॥

अर्थः—जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य के प्रताप से वर्ण चतुष्टय से विभूषित इस संसार को उत्तम रूप से तृप्त करता है।

मन्त्रः—आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्रः उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः। (अथर्व० ११।५।३)

आचार्योऽयं तमुपनयमानः करोत्यात्मगर्भे
तिस्रो रात्रीर्व्रतिनमुदरे ब्रह्मवेत्ता बिभर्ति ।
जीवब्रह्मप्रकृतं विषयध्वान्तहन्तारमेतं
जातं द्रष्टुं विबुधमभिसंयन्ति देवा वरेण्यम् ॥१७॥

अर्थः— ब्रह्मवेत्ता आचार्य बालक का उपनयन करता हुआ उसे अपने विद्यारूप गर्भ में स्थित करता है एवं तीन रात्री समाप्त होने तक भरण पोषण करता रहता है। जीव, ब्रह्म और प्रकृति विषय में अज्ञान रूप अन्धकार के नाशक, गुरुकुल से निकले हुए श्रेष्ठ विद्वान् स्नातक को देखने के लिए समस्त विद्वज्जन आते हैं।

आचार्यदेव उपनीय सुबालशिष्यान्
हृद्यान् निधाय हृदये व्रतिनश्च तावत् ।
अध्यापयत्यखिलवेदगताः सुविद्या—
आदित्यसंज्ञकबुधान् कुरुते न यावत् ॥१८॥

अर्थः—हृदय के अनुकूल उत्तम बालकों का श्रेष्ठ आचार्य उपनयन करके अन्तेवासी ब्रह्मचारियों को हृदय में स्थापित कर चारों वेदों की उत्तम विद्याएँ उस समय तक पढ़ाता है, जब तक कि उसको आदित्य संज्ञक विद्वान् ब्रह्मचारी न बना देवे।

आचार्य आर्षविधिना निगमागमज्ञो—
जातिं तु यां जनयति व्रतिनः सुतस्य ।
श्रीविद्यया सह कुले वसतो जनन्या
सत्याऽजरा भवति सा ह्यमरा द्विजस्य ॥१९॥

अर्थः—वेदशास्त्रज्ञाता आचार्य वैदिक विधि से विद्यारूप माता के साथ गुरुकुल में निवास करते हुए पुत्र तुल्य ब्रह्मचारी के लिए वर्णत्रय में से जिस वर्ण का जन्म देता है (जो वर्ण नियत करता है) वह जाति उस द्विज की अजर अमर और यथार्थ होती है।

वर्णीश्वरान्स्नातकतां प्रपन्नान्
आदित्यतेजोमयदिव्यदेहान्।
जातान् द्विजान् देवगणा बुधेन्द्रा—
निरीक्षितुं तानभियन्ति कान्तान् ॥२०॥

अर्थः—तब सूर्य समान तेजस्वी, दिव्य देहधारी, गुरुकुल से निकले हुए लावण्यशाली, वेदनिष्णात, द्विजव्रतीन्द्र स्नातकों के निरीक्षणार्थ दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वद्गण उत्कण्ठा पूर्वक आते हैं।

बालं सुजातं गृहिणां गृहं ते
यथा गृहस्थाः प्रतिवेशिनोऽपि।
द्रष्टुं समायान्ति तथैव देवा—
दिव्यं द्विजेन्द्रं व्रतिनं कवीन्द्राः ॥२१॥

अर्थः—जैसे गृही जनों के घर में उत्पन्न सुन्दर बालक को देखने के लिए पड़ोस वाले गृहस्थ जन आते हैं, वैसे ही द्विजों में श्रेष्ठ दिव्य ब्रह्मचारी के दर्शनार्थ मेधा सम्पन्न क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग शुभागमन करते हैं।

मन्त्रः—इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति। ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण-लोकांस्तपसा पिपर्ति॥ (अथर्व० ११।५।४)

इयं समिद् गौः प्रथमाऽपरा द्यौ—
रुतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
श्रीब्रह्मचारी समिधा सुमौञ्ज्या
श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥२२॥

अर्थः—यह पृथिवी पहली, द्युलोक दूसरी और अन्तरिक्ष तीसरी समिधा है, दृष्टान्त रूप अग्नि से प्रतिदिन होम करते हुए उत्तम ब्रह्मचारी आचार्य रूप अग्नि में डाली गई तीन समिधाओं से पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्ष इन तीन समिधाओं को पूरित करता है। एवं वह समिधा, मेखला, श्रम और तप से लोक = संसार की पालना व पूर्ति = तृप्ति करता है।

पदार्थजातं पृथिवीनभस्थं
विज्ञाय वर्णी गुरुदेवपादात् ।
मौञ्ज्याञ्चितोऽलं तपसा श्रमेण
ब्रह्मावबोधं लभते सुधीन्द्रः ॥२३॥

अर्थः—मेधावी कटिबद्ध तत्पर ब्रह्मचारी गुरुचरणों में उपस्थित होकर पृथिवी, द्यु व आकाशस्थ सम्पूर्ण पदार्थों को जानकर तप एवं परिश्रम से वेद और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

विज्ञानदीप्त्या कटिबद्धताभिः
परिश्रमेणाथ तपःक्रमेण ।
सुब्रह्मचारी सुगुरौ कृशानौ
समित्समिद्धो जनतां धिनोति ॥२४

अर्थ:—उत्तम ब्रह्मचारी श्रेष्ठ आचार्य रूप अग्नि में पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ तीन समिधाओं से क्रमशः स्थूल संसार = भू-अग्नि-प्राण व सूक्ष्म संसार = भुवः-वायु-अपान, एवं दिव्य-संसार = आत्मा-स्वः-आदित्य और व्यान ज्ञान प्राप्त करके जनता को संतृप्त करता रहता है।

ब्रह्माण्डवत् पिण्डगतं समस्तं
विज्ञाय वस्तुव्रजमात्मलीनः।
स ऊर्ध्वरेता व्रतिनां धुरीणः
प्रीणाति वर्णान् निजपुण्यवृत्तैः ॥२५॥

अर्थ:—वह ऊर्ध्वरेता अध्यात्मरत व्रतीन्द्र, ब्रह्माण्डवत् पिण्डस्थ समस्त वस्तु समुदाय को जानकर अपने सच्चरित्र से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र चारों वर्णों की पालन करता है।

[शालिनी] एधोवत्स्वं मानसं नैजदेह—
माचार्याग्नौ ब्रह्मचारी जुहोति।
व्योम्नो ज्ञानं पार्थिवञ्चाभिगम्य
प्रोन्नेतुं स स्वान्तकायौ समर्थः ॥२६॥

अर्थ:—ब्रह्मचारी समिधा की न्याई आत्मा, मन और शरीर को आचार्यरूप अग्नि में होम करता है = समर्पित करता है = तादात्म्य बनाता है। वहाँ से आकाशीय व पार्थिव ज्ञान प्राप्त करके क्रमशः मन और शरीर को अत्युन्नत करने में समर्थ हो जाता है।

आत्मानञ्च ब्रह्मदिव्यानलेऽसौ
हुत्वा दिव्यं ज्ञानमाप्नोति वर्णी ।
दीप्तं ध्येयं लोकमानस्त्रिलोके
जैवीं शक्तिं वर्द्धयत्यद्भुताञ्च ॥२७॥

अर्थः—वही ब्रह्मचारी परब्रह्मरूप दिव्य अग्नि में आत्मा की आहुति देकर दिव्यज्ञान = ब्रह्मज्ञान = मोक्षानुभूति सम्पादन करता है। तथा त्रिलोक में उज्ज्वल=महान् ध्येय को लक्षित करके आत्मा की सब प्रकार की अद्भुत शक्तियों को बढ़ाता है।

मन्त्रः—पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्। तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ (अथर्व० ११।५। ५)

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी
तिष्ठत्यूर्द्ध्वं तापसं घर्ममाप्तः।
तस्माज्ज्येष्ठं ब्राह्मणं ब्रह्मजातं
सर्वे देवाश्चामृतेनैव साकम् ॥२८॥

अर्थ—ब्रह्मचारी ब्रह्म से पहिले उत्पन्न हुआ है और वह तपोजन्य ज्योति—तेज को धारण करता हुआ ऊंचा उठता है—उन्नत हो संसार को उठाता है। पुनः उससे ब्रह्म सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान अर्थात् ब्रह्म उत्पन्न होता है। और सभी विद्वान् अमर पद के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं।

सर्वोत्कृष्टा प्रथमरचना ब्रह्मणो ब्रह्मचारी ।
ब्राह्मं तेजः कठिनतपसा संवसानोऽध्यराजत् ।
श्रेष्ठं ज्ञानं जगति विततं ब्रह्मसम्बन्धि तस्मान्—
मर्त्या देवा अमरपदवीं यान्ति तज्ज्ञानलाभात् ॥२६॥

अर्थः—ब्रह्मचारी ब्रह्म की सब से उत्कृष्ट व प्रथम रचना है क्योंकि वह कठोर तप से ब्राह्म-तेज रूपी वस्त्र को धारण कर विराजमान होता है, उसी से जगत् में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी ज्ञान फैलता है एवं उसके ज्ञान से लाभान्वित होकर मरणशील विद्वान् लोग अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं।

मन्त्रः—ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ (अथर्व० ११ ।५। ६)

समिधा ब्रह्मचार्येति समिद्धो विधिदीक्षितः ।
कृष्णाजिनं वसानोऽयं दीर्घश्मश्रुमनोरमः ॥३०॥

अर्थः—पूर्वोक्त समिधाओं से ज्ञान दीप्त हुआ, ब्रह्मचर्य विधि से दीक्षित, काला मृ-गचर्म पहने हुए, लम्बी दाढ़ी मूछवाला कान्तिमान् सुन्दर ब्रह्मचारी आता है।

स सद्य एति पूर्वस्मात्समुद्राज्ज्ञानसागरम् ।
लोकान् संगृह्य कर्माणि मुहुः कुर्वन्त्समन्ततः ॥३१॥

अर्थ:—वह ब्रह्मचारी लोक-संग्रह करके पुनः पुनः चारों ओर से कर्म करता हुआ शीघ्र ही पहिले ज्ञान समुद्र से दूसरे उत्कृष्ट ज्ञान-समुद्र को पहुँचता है।

इन्द्रवंशावंशस्थोपजातिः]

युग्मम्—ज्ञानप्रभादीप्तमुखार्कमण्डलः

सुदीर्घकूर्च्चो विधिवत्सुदीक्षितः।

कृष्णाजिनाभूषितवज्रविग्रहो—

वेदार्णवोत्तीर्णतरो व्रतीश्वरः ॥३२॥

स ब्रह्मचर्याश्रमपूर्वसागरात्

समेति सद्यो गृहितोत्तरार्णवम्।

उत्साहयन् मङ्गलकर्मभिर्मुहुः

संगृह्य लोकाञ्जनमङ्गलार्थिनः ॥३३॥

अर्थ:—ज्ञान प्रकाश से देदीप्यमान मुख रूपी सूर्य मण्डल वाला, बढ़ी हुई दाढ़ी मूँछ से सुशोभित, शास्त्र-विधि से व्रत ग्रहण किये हुए, कृष्णमृग-चर्म से वज्रमय शरीर को सजाकर, व्रतियों में श्रेष्ठ वह ब्रह्मचारी वेद-रूपी समुद्र को तैर जाता है (स्नातक बन जाता है) और वह जनकल्याण चाहने वाले लोगों को एकत्रित कर अपने मङ्गल कर्मों से बार-बार उनका उत्साह बढ़ाता हुआ शीघ्र ही ब्रह्मचर्याश्रम रूपी पूर्व समुद्र से गार्हस्थ्य रूपी उत्तर सागर को प्राप्त होता है।

मन्त्रः—ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं
प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह
भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥
(अथर्व० ११।५।७)

युग्मम्—

जनयन् ब्रह्मचारी तद् ब्रह्मापो लोकमात्मवत्।
प्रजापतिं वसुं पूर्वं विराजं परमेष्ठिनम् ॥३४॥

अमृतस्य ततो योनौ गर्भो भूत्वा वसन्नसौ।
इन्द्रो भूत्वा यथादित्यस्तमो हन्त्यसुराँस्तथा ॥३५॥

अर्थः—वह ब्रह्मचारी आत्मसदृश ज्ञान, कर्म व लोक समुदाय को प्रकट करता हुआ शरीर उन्नति से वसु ब्रह्मचारी रूप प्रथम प्रजापति अवस्था को और परम=प्राणों में स्थिति वाली द्वितीय विराट् अवस्था को प्रकट करता हुआ, अन्त में अमृतयोनि=ज्ञान केन्द्र में गर्भभूत रह, इन्द्रनामक ब्रह्मचारी बन, असुरों=दैत्यों का ऐसे नाश करता है जैसे सूर्य अन्धकार का।

प्रजापतिं वसुं विद्याद् विराजं रुद्रसंज्ञकम्।
जानीयाच्चेन्द्रमादित्यं कर्मज्ञानार्हता यथः ॥३६॥

अर्थः—कर्म और ज्ञान की योग्यता के अनुसार स्थूल भूतों के अधिपति स्वरूप शारीरिक ब्रह्मचर्य के

पालक प्राजपति ब्रह्मचारी की वसु संज्ञा, आन्तरिक प्राणों के अधिपति रूप मानसिक ब्रह्मचर्य के पालक विराट् ब्रह्मचारी की रुद्र संज्ञा और दिव्य आत्मिक शक्तियों के अधिपति, आत्मिक ब्रह्मचर्य के पालक इन्द्र ब्रह्मचारी की इन्द्र संज्ञा जानिए।

एकं वेदमधीत्य यो गुरुकुलान्निर्गम्य सन्स्नातको-
गार्हस्थ्यं कुरुते वसुस्स कथितो वेदौ च रुद्रस्तथा।
आदित्योऽमृतयोनिसद्गुरुगृहाद् वेदानथेन्द्रो व्रती
ब्राह्मक्षात्रबलेन सोऽसुरबलं हन्ति प्रजापीडकम् ॥३७॥

अर्थः—एक वेद पढ़ कर जो स्नातक गुरुकुल से निकल पच्चीस वर्ष की आयु में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है वह वसु, दो वेद पढ़कर गुरुकुल से निकल छत्तीस वर्ष की आयु में जो गृहस्थ धर्म का पालन करता है वह रुद्र, इन्द्रव्रत को धारण करता हुआ चारों वेदों में पारंगत हो, अमृतयोनि रूप उत्तम आचार्य कुल से निकल कर अड़तालीस वर्ष की आयु में जो आदर्श गृहस्थ बनता है वह आदित्यसंज्ञक ब्रह्मचारी कहा गया है। वह ही ब्राह्म और क्षात्रबलों द्वारा प्रजापीड़क असुर बल का संहार करने में समर्थ है।

यद्वर्गीयं ब्रह्मचर्यं करोति
तद्वर्गीयं ब्रह्मचारी जगत्याम्।
कर्म ज्ञानं शिक्षयन्स्वानुरूपान्
शिष्यान् प्रज्ञान् व्यञ्जयत्येव लोकान् ॥३८॥

अर्थः—ब्रह्मचारी संसार में जिस श्रेणी के ब्रह्मचर्य को धारण करता है उसी वर्ग की योग्यता के अनुसार लोगों को श्रेष्ठ-श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम ज्ञान व कर्म की शिक्षा देता हुआ अपने सदृश मेधाशाली विद्वान् शिष्यों को आविर्भूत करता है।

सर्वश्रेष्ठो ब्रह्मचारी स इन्द्र,
स्तस्यादेशं गृह्णाते सर्वदेवाः।
शक्ति दैवीमाश्रितस्य प्रतीक्षां,
रक्षस्त्रस्ताः कुर्वते सत्यंनेतुः ॥ ३६ ॥

अर्थः—ब्रह्मचारियों में इन्द्रसंज्ञक ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसके आदर्श को समस्त विद्वज्जन ग्रहण करते हैं। एवं राक्षसों से सन्त्रस्त मानव समुदाय दिव्यशक्ति सम्पन्न इस समुचित-पथ-प्रदर्शक नेता के आने की प्रतीक्षा करता रहता है।

मन्त्रः—आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी
गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवाःसंमनसो भवन्ति॥
(अथर्व० ११।५।८)

उपजातिः—आचार्य उर्वी नभसी उभे इमे,
तदक्षोत्यगाधे पृथिवीं तथा दिवम्।
ते ब्रह्मचारी तपसाऽभिरक्षति,
तस्मिन्सुराः संमनसो भवन्त्यहो ॥४०॥

अर्थः—आचार्य बहुत विस्तृत व बहुत गहरे इन दोनों नभः=द्यु और पृथिवी लोकों को घड़ देता है, अहो! ब्रह्मचारी उन (घड़े हुओं) की तपश्चर्या से सम्यक् रक्षा करता है। ऐसे ब्रह्मचारी में विद्वान् लोग समान मनवाले=अनुकूल हो जाते हैं।

मालिनी—विभुवनरचितायां अद्भुताया इलाया
गुरुतरगहनायाः श्रीदिवो विस्तृतायाः।
अचलनियमजातं सुप्रबन्धञ्चतत्त्वा-
न्यवगमयति शिष्यं देशिकेन्द्रो व्रतीन्द्रम् ॥४१॥

अर्थः—सर्वव्यापक प्रभु द्वारा अत्युत्तम प्रबन्ध व अटल नियम पूर्वक बनाई गई, अद्भुत गुण विशिष्ट, अत्यन्त गहन=दुर्जेय इस विस्तृत भूमि व द्युलोक के तत्त्वों का सर्वविद्यानिष्णात आचार्य प्रवर अपने शिष्य उत्तम ब्रह्मचारी को बोध करा देता है।

द्यावापृथिव्योर्ऋततत्त्वबोधं
स ब्रह्मचारी तपसाऽवतीमाम्।
गुरुर्बुभूषुर्ऋणमोचनार्थं
तस्मिन्त्सुराः सम्मनसो भवन्ति ॥ ४२ ॥

अर्थः—आचार्य बनने की इच्छा करने वाला वह ब्रह्मचारी ऋषि-ऋण से अनृण होने के लिये द्यावापृथिवी के इस यथार्थ तत्त्वज्ञान की तपस्या द्वारा रक्षा करता है। विद्वान् लोग ऐसे तत्त्ववित् मेधावी ब्रह्मचारी के समान-मन वाले अनुकूल रहते हैं।

श्लोक—मन्ये दिवं च पृथिवीं गहनां विशालां
निर्माय यच्छति गुरुर्व्रतिनेऽद्भुते ते।
संरक्षति व्रतिवरस्तपसाऽतुलेन
देवास्तदेकमनसोऽनुगुणा भवन्ति ॥ ४३॥

अर्थः—ये द्यु और पृथिवी लोक अत्यन्त दुर्ज्ञेय व विशाल हैं फिर भी आचार्य-शिल्पी आश्चर्य में डालने वाले इन लोकों के ज्ञान को ग्रहण करने में सुगम बनाकर व्रतपालक ब्रह्मचारी को मानों सौंप देता है। जिस की वह अपरिमित तपस्या से रक्षा करता है, उस समय त्रिलोकस्थ देव भी उसके अनुकूल वर्तते हैं=वर्ताव करते हैं।

मन्त्रः—इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा-
जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥
(अथर्व० ११।५।६)

श्लोक—प्रथमो ब्रह्मचारीमां पृथिवीं सुवसुन्धराम्।
दिवञ्चाहरति प्रज्ञो भिक्षारूपां विशंकटाम् ॥४४॥

अर्थः—उत्तम धन धान्य को धारण करने वाली इस भूमि व विशाल देदीप्यमान द्युलोक का प्रज्ञाशाली सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी भिक्षारूप में आहरण करता है।

ते कृत्वा समिधौ रम्ये उपास्ते गुरुपावकम्।
तयोर्मध्ये हि विश्वानि भुवनान्यर्पितान्यरम् ॥४५॥

अर्थः—फिर उन्हें आचार्य अग्नि में सुन्दर समिधाओं का रूप देकर उपासना करता है=तादात्म्यभाव से

अपने व आचार्य के हृदय को अभिन्न समझता है। इन दोनों लोकों के मध्य ही सब भुवन पूर्णरूप से अर्पित हैं=समाविष्ट हैं।

सर्वश्रेष्ठो ब्रह्मचारी सुभिक्षा-
साचार्यार्थे विस्तृतां गां दिवञ्च।
आहृत्यास्मै ज्ञानयज्ञेश्वराय
दत्ते भक्त्या संविधायेन्धने ते ॥४६॥

अर्थ:—ज्ञान-पिपासु ब्रह्मचारी भिक्षारूप पृथिवी और द्युलोक के विस्तृत ज्ञान को आहरण करके ज्ञान रूप आचार्यवर्य की ज्ञानाग्नि में विनय एवं श्रद्धा-भक्ति से समर्पित इन्धन बना देता है।

आचार्यवह्नौ समिधौ प्रतप्ते
विराजतो मङ्गलदे विशुद्धे।
ते यज्ञशिष्टे सुगुरोः कृपातः
स विन्दते शिष्यवरः सुवर्णी ४७॥

अर्थ:—आचार्यरूपी दहकती हुई ज्ञानाग्नि में समिधारूप द्यु व भूलोक का ज्ञान विशुद्ध=पापभंजक व कल्याणदायक हो जाता है। ज्ञानाभीप्सु श्रेष्ठ ब्रह्मचारी शिष्य बनकर, आचार्यवर्य की कृपा से यज्ञ शेष उन दोनों प्रकार के ज्ञानों को प्राप्त करता है। ब्रह्मचारी का प्रतिदिन भिक्षा लाकर आचार्य को समर्पित करने का यही प्रयोजन है।

त्रिलोकलक्ष्मीं लभते यदि व्रती
स्वभिक्षया तर्हि समर्पयत्यमूम् ।
गुरूत्तमायैव विनिःस्पृहस्ततो
जनैस्सुभिक्षार्हतमाय दीयताम् ॥४८

अर्थः—यदि ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा द्वारा त्रिलोक की लक्ष्मी को भी प्राप्त करता है तो भी लोभ लालच से दूर रह कर उसे आचार्य श्रेष्ठ के ही अर्पण कर देता है। इस लिये हे मनुष्यो ? आप पूजापात्र ब्रह्मचारियों को धन-धान्यरूप उत्तम भिक्षा अवश्य दीजिये । इसका शुद्धरूप ज्ञानरूप में परिवर्तित होकर कुछ काल के अनन्तर आपके ही समीप आ जायेगा।

दानं प्रदत्तं सुखदं सुपात्रे
संजायते यज्ञमयं जनेशैः ।
स ब्रह्मचारी प्रथमा यदीदृक्
सुदुर्लभः पुण्यवतैव लभ्यः ॥४९॥

अर्थः—सुपात्र ब्रह्मचारी के लिये उत्तम जनों द्वारा दिया गया सुखदायक दान यज्ञरूप हो जाता है, ऐसा दुर्लभ श्रेष्ठ ब्रह्मचारी भाग्यशालियों को ही मिल पाता है।

रोदस्योरन्तरे प्रान्ते ह्यन्तरिक्षं समागतम् ।
रोदसीवर्णनेनेत्थं संसारो वर्णितोऽखिलः ॥५०॥

अर्थः—द्यु और पृथिवी के बीच में अन्तरिक्षलोक भी आगया, अतः द्युलोक और पृथिवी लोक के वर्णन से

सारे ही संसार का वर्णन हुआ समझना चहिये ।

•अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य । तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥

(अथर्व० ११।५।१०)

अन्यः परो दिवस्पृष्ठादर्वागन्योऽस्ति भूतलात् ।
ब्राह्मणस्य पवित्रायां गुहायां निहितौ निधी ॥५१॥

अर्थः—एक भूतल से द्यु लोक के पृष्ठ तक उरे का लोक है, दूसरा द्यु-लोक से परे है । इन दोनों का ज्ञान कोष ब्राह्मण की पवित्र बुद्धि में निहित है, छिपा हुआ है ।

ब्रह्मचारी तपोवित्तस्तपसा तौ प्ररक्षति ।
केवलं तनुते विद्वांस्तद् ब्रह्म निधिसन्निभम् ॥५२

अर्थः—तपोनिष्ठ तपस्वी ब्रह्मचारी तप द्वारा इन दोनों कोषों की रक्षा करता है और केवल ब्रह्मवित् विद्वान् ही उस ज्ञानमय निधि का विस्तार करता है । (उपयोग करता है ।)

आभूमेराद्यु लोकं निधिमिव निहितं ज्ञानयुग्मं परस्ता-
त्स्वर्लोकादप्यमुष्मादपरमपि परं ब्रह्मविद्ब्रह्मनिष्ठः ।
सूक्ष्मप्रज्ञागुहायां वितरति गुरुराड् ब्रह्मचारीश्वराय
ज्ञानं संरक्ष्य शक्त्या जगति वितनुते ब्रह्मविद्वा-
न्स शिष्यः ॥५३॥

अर्थः—एक भूलोक से द्युलोक पर्यन्त (देह से बुद्धि प्रकाश तक) का ज्ञान अपरा विद्या है, और दूसरा इस लोक से भी परे नित्य, अविनाशी, दिव्य तत्त्व ब्रह्म का ज्ञान परा विद्या है, यह दोनों प्रकार का ज्ञान आचार्य की सूक्ष्म बुद्धिरूप गुहा में निधि तुल्य छिपा हुआ है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ आचार्य श्रेष्ठ सर्वोत्तम ब्रह्मचारी को इसका वितरण करता है=देता है। फिर वह ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मचारी उस ज्ञान की रक्षा करके अपनी दिव्य शक्ति से संसार में इस उच्च-सम्पत्ति व ऐश्वर्य को फैलाता है।

नरेन्द्रकोषं स यथैव सैनिको
बली भुशण्डीबलतोऽभिरक्षति।
तथान्तरज्ञाननिधिं व्रतीश्वर-
स्तपोबलेनैव विरक्षति ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

अर्थः—जैसे बलवान् सैनिक बन्दूक के बल से राजा के कोष की सम्यक् रक्षा करता है, वैसे ही यह व्रतियों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारी अपने तपोबल से आन्तरिक इस ज्ञाननिधि की नित्य रक्षा करता रहता है।

मन्त्रः ११--अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे। तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि-दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥

(अथर्व० ११।५।११)

युग्मम्---अर्वागितोऽन्योऽस्ति वसुन्धराया
दिवस्ततोऽन्योऽग्निरिमे समेतः।

तावन्तराग्नी नभसी तयोर्द्धा-

अधिश्रयन्ते वररश्मयो मिथः ॥५५॥

तान्ब्रह्मचारी तपसाऽधितिष्ठति

तपो हि तद् द्वन्द्वसहिष्णुताऽस्ति या।

शीतोष्णतृट्क्षुत्सुखदुःखयुग्मके-

ष्वपि श्रयेद् यः समतोलतां सदा ॥ ५६ ॥

अर्थः—एक अग्नि वसुन्धरा से परे है, दूसरी द्युलोक से इधर है, ये दोनों अग्नियाँ इन दोनों लोकों के मध्य में एकत्र होती हैं, जहाँ उनकी दृढ किरणें परस्पर में टकराती हैं। ब्रह्मचारी तप द्वारा उनका अधिष्ठाता बनता है = अधिपति हो उन किरणों को वशीभूत करता है। शीत-उष्ण, भूख-प्यास सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में जो समतुलन रखता है, वह तपस्वी कहलाता है। इन द्वन्द्वों को सह जाना ही तप है।

स्वर्लोकवह्नेर्वसुधानलस्य

करास्समाध्नन्ति मिथोऽन्तरिक्षे।

आघातकारिष्वपि तेषु वर्णी

तिष्ठत्यकम्पः स्वतपोबलेन ॥ ५७ ॥

अर्थः—द्युलोक और पृथ्वीलोक की अग्नि की किरणें अन्तरिक्ष में आकर परस्पर टकराती हैं, चोट पहुंचाने वाली उन किरणों में भी ब्रह्मचारी अपने तपोबल से अविचलित रहता है।

मस्तिष्कतो ज्ञानमयः कृशानुः
स जाठराग्निश्च हृदन्तरिक्षे ।
विरोधिनौ तौ मिलतस्तयोस्तु
ध्रुवोऽनिशं तिष्ठति स व्रतीशः ॥५८॥

अर्थः—(इसी प्रकार देह में) मस्तिष्क से ज्ञान रूप अग्नि और उदर से जठराग्नि निकलकर परस्पर विरोधी भाव रखती हुई हृदयरूपी अन्तरिक्ष में आकर मिलती हैं=टकराती हैं, उन दोनों के संघर्ष में जो नित्य प्रति स्थिर रहता है वह ब्रह्मचारियों में धन्य है ।

स रश्मिगामी सुनटो यथा निजं
तोलं समालम्ब्य चलत्यकम्पनः ।
तथाऽसिधाराव्रतिनां पुरन्दरो-
द्वन्द्वेष्वलं धैर्यतुलां विरक्षति ॥५६॥

अर्थः—जैसे रस्सी पर चलने वाला निपुण नट अपने बोझ को सन्तोलित करके विना कांपते हुए सीधा चलता है वैसे ही तलवार की पैनी धार के समान तीक्ष्ण व कठोर व्रतों का पालन करने वाला श्रेष्ठ ब्रह्मचारी-इन्द्र द्वंद्वों में पूर्णरूप से धैर्यरूपी तराजू को संतुलित रखता है ।

जैसे गीता में भी उचित व्यवहार का निर्देश किया है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

मन्त्रः--अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनुभूमौ जभार । ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः

तेन पृथिव्याँ जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
(अथर्व० ११।५।१२)

अभिक्रन्दञ्छ्तिङ्गोऽलं स्तनयन्नरुणो यदा ।
ब्रह्मचारी बृहच्छेपो भूमावनुहरत्यसौ ॥६०॥

अर्थः—जब यह अत्यन्त बलशाली, श्यामवर्ण, देदीप्यमान, ब्रह्मचारी गरजता है और कड़कता हुआ भूमि पर अनुग्रह करता है।

तदा सिञ्चति यद्रेतः सानौ समतलावनौ ।
पृथिव्यां तेन जीवन्ति चतस्रः प्रदिशो भृशम् ॥६१॥

अर्थः—तब वह समतल भूमि व उच्च स्थानों पर रेतः का सिंचन करता है, जिससे पृथ्वी पर चारों दिशायें निरन्तर जीवन प्राप्त कर रही हैं।

तदम्बरस्थं जगदाधिदैविकं
सुब्रह्मचारी जलवीर्यमारवैः ।
स्वमूर्ध्वगामि प्रविधाय वर्षणैः
करोति पृथ्वीं वरजीवनान्विताम् ॥६२॥

अर्थः—आकाश स्थित आधिदैविक जगत् रूप बहुबलशाली देदीप्यमान ब्रह्मचारी किरणों द्वारा अपने जल रूप वीर्य को उर्ध्वगामी बनाकर वर्षण से पृथ्वी को उत्तम जीवन (धारक शक्ति) सम्पन्न बना देता है।

क्रन्दन्नमन्दं स्तनयन् बृहद्वलः
सुश्यामलो मेघ इवाधिभौतिकः ।
समाज आत्मव्रतिभिः श्रुतामृतं
प्रवर्ष्य संजीवयति प्रजागणम् ॥६३॥

अर्थः—बहुत प्रभावशाली, शक्तिमान्, श्यामवर्ण, (प्राणियों में श्रेष्ठ) आदिभौतिक समष्टि ब्रह्मचारी अपने स्नातक बन्धुओं द्वारा वेदामृत की वृष्टि कराके समस्त प्रजा को वैसे ही उत्तम जीवन प्रदान कराता है जैसे बहुत गरजता और कड़कता हुआ काला मेघ।

स ऊर्ध्वरेतास्तपसा व्रतीश्वरः
प्रलभ्य धर्माम्बुधराम्बुवर्षणम्।
समग्रमङ्गं नवदिव्यजीवना-
मृतैःप्रफुल्लं कुरुतेऽरुणप्रभः ॥६४॥

अर्थः—उसी प्रकार (आभ्यन्तर शक्ति सम्पन्न) ब्राह्म-तेज से देदीप्यमान, व्रतियों में श्रेष्ठ (व्यष्टि-जगत्) ऊर्ध्व-रेता योगी 'ब्रह्मचारी' तपस्या से धर्म-मेघ समाधि में अम्बु-वर्षण (ओज) को प्राप्त करके नई-नई दिव्य जीवनीय (अणिमा, लघिमा, गरिमा आदि अलौकिक सिद्धियों द्वारा प्राण केन्द्रों पर) अमृतवृष्टि कर समस्त शरीर के अङ्गों को तृप्त करता रहता है। शरीर के सारे सूक्ष्म अवयव जीवन प्राप्त करते रहते हैं।

वीर्योर्ध्वगत्यां मनुजस्य योगिनो—
यो दिव्य आनन्द इहोपजायते।
तं शान्तमेते क्षणसौख्यभोगिनो-
विद्युर्यदि स्याद् बहुमङ्गलं तदा ॥६५॥

अर्थः—योगी मनुष्य के वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर जो दिव्य आनन्द उसे मार्ग में आता है यदि ये क्षण सुखभोगी

(संसारी जन) उस शान्त और गम्भीर आनन्द को समझ जायें तो उनका बहुत कल्याण हो।

कल्माषश्यामवर्णो वियति विलसति ब्रह्मचारीन्द्रमेघः
क्रन्दङ्घोरं च गर्जन्नुपचितसुबलः सोऽनुगृह्णाति भूमिम्।
रेतःशाली पृथिव्यां गिरिवरशिखिरक्षेत्रभागेऽम्बुरेतः
सिञ्चत्याशश्चतस्रस्सकलतनुभृतस्तेन जीवन्ति तृप्ताः
॥ ६६ ॥

अर्थः—जल धारण से अत्यन्त बलशाली भूरा व श्यामवर्ण मेघ ब्रह्मचारी भयंकर गर्जता व कड़कता हुआ आकाश में अपनी छटा दिखाता है, एवं भूमि पर दयादृष्टि घुमाता है। रेतःशाली=जलपुंजधारी वर मेघ पृथ्वी के ऊँचे पर्वत शिखरों व सस्य-सम्पत-सनाथ क्षेत्र भागों पर जलरूपी वीर्य का सिंचन करता है, जिससे तृप्त हुआ समस्त प्राणिवर्ग व चारों दिशायें जीवन प्राप्त करती हैं।

मन्त्रः—अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमादधाति। तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः। अथर्व० ११।५।१३ ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमस्यप्सु वाया—
वेधो राशिं ब्रह्मचार्यादधाति।
तस्यार्चींषि व्योम्नि भिन्नं चरन्ति
तस्यैवाज्यं पूरुषो वर्षमापः ॥६७॥

अर्थः—ब्रह्मचारी अग्नि में, सूर्य में, चन्द्रमा में, जल में और वायु में पृथक्-पृथक् समिधाओं का आधान करता

है, उन समिधाओं की लपटें आकाश में भिन्न-भिन्न रूप से वर्तमान रहती हैं, उन्हीं का देदीप्यमान आत्मा है तथा व्यापक कर्म ही वर्षा है।

सूर्येऽग्नौ पवने हिमांशुवलये श्रीब्रह्मचारी जले
तत्तज्ज्ञानमयीं पवित्रसमिधं भक्त्या दधातीशितुः।
आकाशे पृथगेव यन्ति विमले तासां सदर्चींष्यहो !!
तासामाज्यं यमीन्द्रपुरुषः सत्कर्मवृष्टिः क्रतोः ॥६८॥

अर्थः—शासक आचार्य की भक्ति करता हुआ उत्तम ब्रह्मचारी सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा तथा जल में तत्तत् ज्ञान का द्योतक पवित्र समिधाओं का आधान करता है अहो ! उन समिधाओं की ज्वालायें निर्मल आकाश में पृथक पृथक् ही वर्तमान रहती हैं। संयमी आत्मा उन्हीं का घृत रूप होता है तथा यज्ञ से सत्कर्मरूपी वृष्टि होती है।

तात्पर्य यह है कि—सूर्यादि का ज्ञान ब्रह्मचारी के पवित्र अन्तःकरण में पृथक्-पृथक् स्थित रहता है, मिलकर खिचड़ी नहीं हो जाता, एवं सत्कर्मों से पुरुष संयमी बनता है। शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रतिदिन यज्ञ करने का यही उद्देश्य है।

रेतःप्राणमनोविलोचनसुवाग्देवाग्निषु व्यक्तितां
हुत्वा स्वां समिधं विधाय वशगान् देवानिमानात्मनः।
एषां तत्त्वविदेव संयमधनः सम्पद्यते वर्णिराट्
तत्साहाय्यबलेन विन्दतितरामानन्दवर्षामृतम् ॥६९॥

अर्थः—वीर्य, प्राण, मन व ज्ञानेन्द्रियों के प्रतिनिधि चक्षु तथा कर्मेन्द्रियों के प्रतिनिधि वाक्-इन्द्रिय दिव्याग्नियों में निज समिधाओं को समर्पित करते हुए समस्त देवगणों को अपने अधीन बनाकर ही वस्तुतः वह अत्यन्त संयमी—तत्ववेत्ता व उत्तम ब्रह्मचारी बनता है। फिर तो वशंवद हुए उन देवों की सहायता से वह आनन्दामृत का नित्य पान करता है।

ऊर्ध्वगस्य हि तैलस्य वर्तिकावत्मना यथा।
सुषुम्णया सुवीर्यस्य ज्वलनं वर्णिनस्तथा ॥७०॥

अर्थः—सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा ऊपर गये हुए ब्रह्मचारी के उत्तम वीर्य का वैसा ही दीपन होता है जैसे बत्ती के मार्ग से चढ़े हुए तैल का।

विविधां ज्ञानसन्दीप्तिं कुर्वते ब्रह्मचारिणः।
ततो नानाविधा दिव्या लभ्यन्ते तैः सुसिद्धयः ॥७१॥

अर्थः—ब्रह्मचारी गण को भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञानों का प्रकाश हो जाता है, उससे वे अनेक विध दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं।

विष्णोरग्न्यर्कचन्द्रानिलसलिलमुखाः
शक्तयः सन्ति दैव्या,

आध्यात्मिकयोऽपि तासां वपुषि तनुजुषां वाग्दृगाद्याः सदंशाः ।

पंचप्राणैः सुभूतैरपि जगति महानन्वयः ख्यात आसां ।

बाह्यान्तर्देवतृप्त्यै यजति विमलमात्मानमात्मज्ञ-वर्णी ॥७२॥

अर्थ—जगत् में विष्णु भगवान् की शक्तियों में अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और पानी दिव्य शक्तियाँ प्रधान हैं—शरीर से सम्बन्धित उन अग्नि आदि शक्तियों के सार-अंश में शरीर में भी वाक् चक्षु-मन-प्राण और वीर्य क्रमशः आध्यात्मिक शक्तियें हैं। प्राण-अपान-उदान-समान और व्यान रूप पांच प्राणों तथा पृथिवी-द्यौ विद्युत दिशाएँ व आकाश के साथ भी अग्नि आदि दैविक शक्तियों का बड़ा भारी सम्बन्ध सर्वविदित है। आत्मरत ब्रह्मचारी बाह्य व आभ्यन्तर इन समस्त देवों की तृप्ति के लिए अपने पवित्र आत्मा का यजन करता रहता है।

मन्त्रः—आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥
(अथर्व० ११।५।१४)

आचार्यो वरुणो मृत्युः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूतास्सन्ति सत्वानस्तैरिदं हि स्वराभृतम् ॥७३॥

अर्थ—वरुण-मृत्यु-सोम-ओषधियें तथा पयः ये आचार्य के पांच रूप हैं, ये सत्वानः = पांचों बल जीमूताः=

जीवन बरसाने वाले मेघ हैं, इन्हीं बलों के द्वारा आचार्य ने अपने ब्रह्मचारी के लिए सुख, अमृत्व,तेज का निःसन्देह आहरण किया हुआ है।

आचार्यस्याज्ञया पूर्वं स्वेच्छानान्तु निकन्दनम्।
शिष्याणां मरणं यस्मादाचार्यो मृत्युरुच्यते ॥७४॥

अर्थ—आचार्य की आज्ञा से अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं का अन्त कर देना (सर्वथा समर्पित हो जाना) शिष्यों का मरण है, इस हेतु से आचार्य को मृत्यु रूप कहा गया है। ऐसा करने से ही शिष्य विद्या-आधान द्वारा दूसरा जन्म धारण करता है।

युग्मम्—जीर्णं शरीरमाहृत्य मृत्युरूपो यथेश्वरः।
नवीनं देहिने दत्ते वर्णिने गुरुराट् तथा ॥७५॥
संस्कारान् पूर्वजान् कामान्संत्याज्य हितरोधकान्।
उज्जवलान्सुगुणान् भव्यान् द्विजार्हानार्यभूषणान् ॥७६॥

अर्थ—मृत्युरूप ओ३म् जैसे जीर्ण शरीर को छीन कर आत्मा के लिए नवीन शरीर देता है, वैसे ही मृत्युरूप आचार्य हित प्रतिबन्धक पूर्व जन्मगत संस्कारों व कामनाओं को छुड़ाकर ब्रह्मचारी के लिए उज्ज्वल, सुन्दर, द्विजयोग्य एवं आर्यों के भूषणरूप सद्गुणों का प्रदान करता है।

यथा शोभते वर्णो रोपितो निर्मलांशुके।
गुणाधानैस्तथा वर्णी दीप्यते विमलान्तरः ॥७७॥

अर्थ—जैसे अति उज्ज्वल श्वेत वस्त्र पर चढ़ाया

हुआ रंग अपनी छटा दिखाता है वैसे ही पवित्र हृदयशाली ब्रह्मचारी गुणों के धारण से देदीप्यमान होता है।

बध्नाति नियमैः शिष्यानाचार्यः पापवारणैः।
सदाचारैर्यदा नित्यं तदा वरुणरूपकः ॥७८॥

अर्थ—इसके अनन्तर जब आचार्य पापनिवारक सदाचरण नियमों से शिष्य को प्रतिक्षण नियन्त्रित करता है तब वह वरुण रूप है।

यदा भवति शिष्याणामभ्यासो नियमावने।
सोमरूपस्तदाचार्यो दृश्यते प्राणतः प्रियः ॥७९॥

अर्थ—नियन्त्रित रहने से जब शिष्यों को नियम पालन में अभ्यास हो जाता है तब वही आचार्य सोमरूप हुआ हुआ प्राणों से भी प्यारा दिखाई देता है।

यदाचार्यो विनेयानां दुःखशोकापहारकः।
सम्पद्यते तदा प्रोक्त ओषधिप्रतिमः पिता ॥८०॥

अर्थ—एवं जब आचार्य विनीत शिष्यों के दुःख व शोक को सर्वथा दूर हटाने वाला होता है तब उसे ओषधि के समान पालक पिता कहा गया है।

तात्पर्य—सौम्यरूप आचार्य के सम्मुख ही सब प्रकार की कठिनईयां रखने से तन्निवारकत्वात् आचार्य औषध रूप है।

अन्ततोऽयं पयोरूपो जीवनामृतपायिनी।
जायते जननी नूनं गुरुदेवः सुवर्णिनाम् ॥८१॥

अर्थ—अन्त में वह आचार्य पयोरूप होकर ब्रह्मचा-

रियों के लिए निःसन्देह जीवन रस पिलाने वाली माता बन जाता है।

नवजीवनसम्प्राप्तिर्जायते ब्रह्मचारिणाम्।
पयोरूपे गुरौ स्निग्धे संवृत्ते पुष्टिदायके ॥८२॥

अर्थ—आचार्य के पुष्टिदायक—प्रेम करने वाले व पयोरूप होने पर ब्रह्मचारियों को नवीन जीवन की उपलब्धि होती है।

महाभयङ्कराचार्यो मृत्युरूपो तसन्मुखे।
अन्ते पयोमयो जातो नवजीवनदायकः ॥८३॥

अर्थ—पहले आचार्य मृत्युरूप में महाभयंकर प्रतीत होता है, परन्तु अन्त में नवीन जीवन का संचारक होने से पयोरूप=पुष्टिदायक हो जाता है।

जीवनामृतवर्षीणि सत्त्वानीमानि सद्गुरोः।
तैराहरति वर्णिभ्यो दिव्यं तेजोऽमृतं सुखम् ॥८४॥

अर्थ—आचार्य के पांचों बल (रूप) जीवनामृत की वर्षा करने वाले हैं, इन्हीं के द्वारा वह ब्रह्मचारियों के लिए दिव्य-तेज-अमृत व सुख का आहरण करता है। इसलिए ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेने वालो! अपने आपको आचार्य के चरणों में पूर्ण समर्पित कर दो।

मन्त्रः—अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ। तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः॥ (अथर्व० ११।५।१५)

आचार्यो वरुणो भूत्वा केवलं तनुते घृतम्।
अमाश्रमे वसन् यद्यत् समिच्छति प्रजापतौ ॥८५॥

अर्थ:—आचार्य वरुण होकर ब्रह्मचारी के साथ आश्रम (गुरुकुल) में निवास करते हुये ब्रह्मचारी के लिये उस २ ज्ञान दीप्ति व तेज का विस्तार करता है जिस २ को प्रजापति (भगवान्) की इच्छा समझता है।

तत्तन्मित्रनिभः शिष्यः स्नातको ब्रह्मचारिराट्।
स्वादात्मनोऽधिलोकानां कल्याणाय प्रयच्छति ॥८६॥

अर्थ:—मित्र तुल्य (भक्ति परायण, श्रद्धालु) शिष्यत्व को प्राप्त हुआ श्रेष्ठ ब्रह्मचारी स्नातक होने के पश्चात् उस उस ज्ञान दीप्ति व तेज को अपनी अन्तरात्मा से निकाल कर संसार के कल्याणार्थ (आचार्य के प्रसाद रूप में) वितरण करता है।

आचार्यो व्रतिना समं गुरुकुले नित्यं वसन् निर्मलं
तेजोमण्डितजीवनं वितनुते सज्ज्ञानधारां वटोः।
भूत्वा पापनिवारकश्च वरुणो यद्यत्ततो वाञ्छति
प्राजापत्यकृते प्रयच्छति सुहृद् वर्णी तदात्मद्युतेः ॥८७

अर्थः—आचार्य ब्रह्मचारी के साथ निरन्तर गुरुकुल में वास करते हुए ब्रह्मचारी की वास्तविक ज्ञान धारा को विस्तृत करता है और उसका जीवन निर्मल व तेजस्वी बनाता है एवं वह पाप-निवारक वरुण रूप होकर प्रजापति भगवान् की विशुद्ध धर्मादि इच्छा के लिए वेदविद्यानिष्णात ब्रह्मचारी से जो जो (प्रचार रूप में या दक्षिणा रूप में) चाहता है, उत्तम-विनयी-श्रद्धालु-मित्र-तुल्य ब्रह्मचारी उस-उस को अपनी आत्मा की चमक (शक्ति) से पूर्णतया समर्पित कर देता है।

आजीवनं स सम्बन्ध आचार्यब्रह्मचारिणोः ।
ज्ञानजीवनदातुस्तु सदावश्यकता गुरोः ॥८८॥

अर्थः—आचार्य और ब्रह्मचारी का पारस्परिक सम्बन्ध जीवन पर्यन्त है क्योंकि (शिष्य के कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने पर भी समय-समय पर उत्पन्न शंकाओं के निवारणार्थ) ज्ञानमय जीवन प्रदाता आचार्य की सदा आवश्यकता रहती है ।

वरुणमित्रनिभौ गुरुवर्णिनौ
जनयतो घृतमात्मसुबोधजम् ।
तदमृतं प्रतिजीवतृषं यथा
हरति मानसतर्षमिहात्मनाम् ॥८९॥

अर्थः—वरुण व मित्र तुल्य गुरु और शिष्य दोनों आत्मा के संज्ञान से उत्पन्न तेज व दीप्ति का आविर्भाव करते हैं वह ज्ञानामृत अज्ञानी मनुष्यों की ज्ञान पिपासा को ठीक वैसे ही शान्त कर देता है जैसे जल प्रत्येक पिपासु की प्यास को ।

वितरति गुरुदेवः शिष्यरत्नाय देयं
शुभगुरुकुलवासे ब्रह्म विज्ञानवित्तम् ।
अथ भवति विनेये स्नातके ज्ञानदात्रे,
भुवनहितकृतेऽसौ द्रव्यमर्च्यं प्रदत्ते ॥९०॥

अर्थः—गुरुकुल के पवित्र धाम में तो दिव्य गुण विभूषित आचार्य शिष्यरत्न के लिए दातव्य ब्रह्मज्ञान रूप धन प्रदान करता है और शिष्य अपने स्नातक हो जाने

लोक कल्याण के लिए ज्ञानदाता गुरुदेव को (दक्षिणा रूप में) अर्चनीय धन अर्पण करता है। भावपूर्ण दक्षिणा लोक हित कर ज्ञान-प्रसार का एकमात्र प्रतीक है।

मन्त्रः—आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी॥
(अथर्व० ११।५।१६)

अचार्यो ब्रह्मचार्यस्ति ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
विराजति प्रजास्वामी विराडिन्द्रो वशीश्वरः॥११॥

अर्थः—आचार्य ब्रह्मचारी होता है तभी ब्रह्मचारी (स्नातक होकर) "प्रजापति" = प्रजापालक बनता है फिर वही प्रजापति "विराट्" = विशेष ज्ञान-प्रकाशक बन जाता है और अन्त में अत्यन्त जितेन्द्रिय होकर "इन्द्र" कहलाता है।

वसुरुद्रवरादित्यास्त्रिविधा ब्रह्मचारिणः।
स्थूलसूक्ष्मात्मजगतां वशिनो गुरुमूर्त्तयः॥ १२॥

अर्थः—वसु रुद्र तथा आदित्य तीन प्रकार के ब्रह्मचारी हैं जो क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म व अध्यात्म जगत् को वश में करने वाले प्रत्यक्ष गुरुदेव का ही स्वरूप हैं।

व्रती गृही वनीशोऽसौ संन्यासी क्रमशो वशी।
आचार्योत्तररूपाणि जगन्मङ्गलहेतवः॥ १३॥

अर्थः–दूसरा अर्थः—तथा ब्रह्मचारी ही क्रमशः आदर्श गृहस्थ, आदर्श वानप्रस्थ तथा आदर्श संन्यासी बनता है। ये सारे ही जगत् का कल्याण करने में कारण-

भूत आचार्य के उत्तर रूप हैं (आचार्य ही इनका स्रष्टा है)।

मन्त्रः—ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥
(अथर्व० ११।५।१७)

तपसा ब्रह्मचर्येण राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति॥६४॥

अर्थः—राजा ब्रह्मचर्य रूप तपस्या से राज्य की समुचित रक्षा करता है एवं आचार्य भी ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मचारी को चाहता है।

ब्रह्मचर्यतपसात्मसंयमी
रक्षितुं प्रभवति प्रजागणम्।
ज्ञानशक्तिगुणसम्पदुन्नतं
कर्तुमुज्ज्वलगुणैश्च भूपतिः॥ ६५॥

आत्मसंयमी नरेन्द्र ही ब्रह्मचर्य तप द्वारा अपने प्रजागण की रक्षा करने में समर्थ होता है तथा अपने सत्य-न्याय-दयार्द्रता आदि उज्ज्वल गुणों से जनता को ज्ञान, शक्ति, सद्गुण व धनधान्य से उन्नत करने में शक्तिमान् बनता है।

शान्तिदं जीवनं यस्य ब्रह्मचर्यमहोज्ज्वलम्।
स्वसन्निभं स आचार्यो ब्रह्मचारिणमिच्छति॥६६॥

अर्थः—अहो! जिस आचार्य का जीवन ब्रह्मचर्य से अति उज्ज्वल और शक्तिदायक है वही अपने तुल्य ब्रह्मचारी की इच्छा करता है।

मन्त्रः—ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥
(अथर्व० ११।५।१८)

सुकन्या ब्रह्मचर्येण युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येण ह्यश्वो घासं जिगीर्षति ॥६७॥

अर्थः—कान्तिमयी कन्या ब्रह्मचर्य से ही जवान पति को प्राप्त करती है। बैल और घोड़ा भी ब्रह्मचर्य से ही घास खाना चाहते हैं।

शुभगुणवरविद्यादीप्यमाना सुकन्या
कृतगुरुकुलवासा ब्रह्मचर्येण धन्या ।
विहितगुरुनिवासं विन्दते सत्पतिं सा
व्रतिवरयुववीरं स्नातिका स्नातकेन्द्रम् ॥६८॥

अर्थः—ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुल में नियत समय तक रही हुई, शुभगुणों व उत्तम ज्ञान से समुज्ज्वल प्रशंसनीय स्नातिका बनी हुई कन्या, आचार्य चरणों में रहे हुए ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ जवान वीर उत्तम स्नातक को सुन्दर पति के रूप में प्राप्त करती है।

वृषभो ब्रह्मचर्येण भोक्तृत्वं लभतेतराम् ।
तरङ्गश्चणकादीनां पाचने तेन शक्तिमान् ॥६९ ॥

अर्थः—बैल ब्रह्मचर्य से अपने भोक्तृत्व पदार्थ घास आदि को निरन्तर प्राप्त करता रहता है तथा घोड़ा भी ब्रह्मचर्य शक्ति से ही चने आदि पदार्थों के पचाने में समर्थ होता है।

मन्त्रः—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥
(अथर्व० ११।५।१६)

तपसा ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युं जयन्त्यलम् ।
इन्द्रो हि ब्रह्मचर्येण देवेभ्योऽस्ति स्वराहरः ॥१००॥

अर्थः—देवगण ब्रह्मचर्य के तपोबल से मृत्यु को पर्याप्त मात्रा में जीत लेते हैं । तथा इन्द्र ब्रह्मचर्य से ही देवों के लिए सुख का आहरणकर्ता बनता है ।

मृत्युं हत्वाऽतुलसुखजुषो ब्रह्मचर्येण देवा—
विद्वद्वर्या ऋषिमुनिजना ब्रह्मतेजो बलाढ्याः ।
अग्न्यादिभ्यो मनुजविबुधेभ्यो वपुर्निर्जरेभ्य—
स्तेजस्सौख्यं वितरत इमाविन्द्र आत्मा च वर्णी॥१०१॥

अर्थः—ब्रह्मचर्य के प्रताप से मृत्यु को दूर हटाकर देवगण अपरिमित सुखसेवी बन गये । तथा विद्वदृषि-मुनिजन अत्यन्त ब्रह्मतेज बलधारी हो गये । एवं परमेश्वर ब्रह्मचारी विद्वज्जनों के लिए और शरीर अधिष्ठाता आत्मा शरीरस्थल देव इन्द्रियों के लिए यथायोग्य सुख और तेज का वितरण कर रहे हैं ।

संयमी ब्रह्मचारी यद् भुङ्क्ते दिव्यं परं सुखम् ।
वराका भोगिनोऽमुष्य सहस्रांशं न ते विदुः ॥१०२ ॥

अर्थः—संयमी ब्रह्मचारी जिस अद्भुत दिव्य सुख का अनुभव करता है, नरक की तैयारी करने वाले बिचारे विलासप्रिय जन उस परम सुख के हजारवें भाग को भी नहीं जानते ।

आनन्दतेजोऽमृतदं सुभद्रं
तद् ब्रह्मचर्यं जगतोऽस्ति मूलम् ।
इन्द्रप्रभोर्दिव्यमदोऽन्तरेण
ब्रह्माण्डचक्रं न चलेत् क्षणान्तम् ॥१०३॥

अर्थः—आनन्द तेज व अमृत को देने वाला अतः एव अत्यन्त कल्याणकारी होता हुआ यह ब्रह्मचर्य जगत् का मूलकारण है। ब्रह्मचर्यरूप अटल नियमों के बिना ऐश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर का यह दिव्य ब्रह्माण्ड चक्र क्षण भर भी नहीं चल सकता।

मन्त्र—ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥
(अथर्व० ११।५।२०)

ओषध्यो भूतभव्यं भो अहोरात्रौ वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥१०४॥

अर्थः—ओषधियाँ, भूत और भविष्यत्, दिन और रात तथा छः ऋतुओं के साथ वर्ष, ये सब ब्रह्मचारी हुए हैं = अटल नियमों के पालक हैं। दूसरा अर्थः—भगवान् ब्रह्मचारी से ये सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

सद्ब्रह्मचारिण इदं भुवनं प्रजातं
तद्ब्रह्मचर्यनियमानवति प्रकामम् ।
संवत्सरस्स ऋतुभिर्धरणीरुहाद्या
भूतञ्च भव्यमृतुगामि दिनं निशा च ॥१०५॥

अर्थः—सर्वोत्कृष्ट ओ३म् ब्रह्मचारी से यह समस्त

ब्राह्माण्ड अत्युत्तम रचना रूप में उत्पन्न हुआ है और उसके ब्रह्मचर्य-नियमों का यथेष्ट व निरन्तर पालन कर रहा है। देखो तो सही:—ऋतुओं के साथ वर्तमान वर्ष, वृक्ष वनस्पति आदि पदार्थ, अतीत और भावी, रात और दिन सब के सब ऋतुगामी हैं:—कोई भी अपने नियम को भङ्ग नहीं करता = नियन्त्रित हुए अनवरत कर्मरत हैं।

मन्त्रः—पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥
(अथर्व० ११।५।२१)

पशवः पार्थिवा दिव्या ग्राम्या आरण्यकाश्च ये।
पक्षाः पक्षिणो येऽपि ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥१०६॥

अर्थ:—पृथिवी-निवासी जो पंख रहित जङ्गल व ग्राम के पशु तथा गगन-विहारी पङ्खवाले पक्षी हैं वे सब ब्रह्मचारी हैं।

दिव्याः पक्षिगणा गिरीन्द्रवनजाः सिंहादयः प्राणिनो-
ग्राम्या गोमहिषाश्वकुक्कुरमुखा नीरस्थमत्स्यादयः।
सर्वे ब्रह्मनिदेशपालनपरास्ते ब्रह्मचर्यावनं
कुर्वाणा ऋतुगामिनो भगवतः सृष्टौ मनुष्येतरे ॥१०७॥

अर्थः—भगवान् की सृष्टि में मनुष्य से भिन्न आकाशचारी पक्षी, पर्वत और वन में उत्पन्न सिंह आदि, जलनिवासी मच्छली आदि जितने भी प्राणी हैं, वे सब ब्रह्म आज्ञा पालन में तत्पर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋतुगामी बने हुए हैं।

तद्ब्रह्मचर्योत्तमवायुमण्डले ।
व्याप्ते त्रिलोक्यामपि मानव ! त्वया ।
तद्ब्रह्मचर्यं तपसा निषेव्यतां
तदन्तरेण स्थितिरेव नास्ति ते ।।१०८।।

अर्थ:—हे मनुष्य । त्रिलोक में व्याप्त ऐसे अत्युत्तम ब्रह्मचर्य के वातावरण में तपश्चरण से तू सर्वसिद्धिकारी ब्रह्मचर्य का सेवन करले, अन्यथा उसके बिना तो तेरा जीवन टिक ही नहीं सकता !

मन्त्र:—पृथक् सर्वे प्राजापत्या: प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ।।
(अथर्व० ११।५ २२)

प्राजापत्याः पृथक् सर्वे प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
ब्रह्म रक्षति तान्सर्वानाभृतं ब्रह्मचारिणि ।।१०९।।

अर्थ:—सभी प्रजापति ईश्वर के नियमों से उत्पन्न हुए प्राणी अपने में पृथक् पृथक् रूप से प्राणों को धारण कर रहे हैं। एवं ब्रह्मचारी में संगृहीत हुआ वेद ज्ञान उन सब की रक्षा करता है ।

वेधस्सन्नियमैः कृतास्तनुभृतः प्राणान् पृथग् बिभ्रति
सर्वे स्वात्मसु रक्षति प्रतिधृतं ज्ञानं परं ब्रह्मणः ।
तसर्वान् विविधाकृतीन्प्रकृतितो भिन्नान्समं प्राणिन
संसारोनहि जीवितुं प्रभवति ज्ञानं विनावैदिकम
।।११०।।

अर्थ:—जगन्नियन्ता के सन्नियमों से उत्पन्न सब शरीरधारी अपने अपने शरीर में प्राणों को धारण कर रहे

हैं। ब्रह्मचारियों में धारण किया हुआ ब्रह्म का उत्कृष्ट ज्ञान विविध आकृतिवाले स्वभाव से भिन्न उन सब प्राणियों की समानता से रक्षा करता है। भोले भाइयो! वैदिकज्ञान के बिना तो संसार जीवित रह ही नहीं सकता।

मन्त्रः—देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्। तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ (अथर्व० ११।५।२३१)

तद् देवानां ब्रह्मचर्यं हि सारं
यन्नाक्रान्तं रोचमानं सदैति।
तस्माज्ज्येष्ठं ब्राह्मणं ब्रह्मजातं
सर्वे देवाश्चामृतेनैव साकम् ॥१११॥

अर्थ—अतः ऋषि मुनियों का सार-भूत किसी से अभिभूत न होने वाला यह ब्रह्मचर्य सदा से चमकता हुआ आ रहा है। उसी के प्रताप से सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मसम्बन्धि ज्ञान उत्पन्न होता है। और उसी से सम्पूर्ण देव ब्रह्म के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

विना ब्रह्मचर्यं न देवाधिदेवो—
बिना ब्रह्मचर्यं न देवोऽस्ति किञ्चित्।
बिना ब्रह्मचर्यं न देवस्य सृष्टि—
र्जना ब्रह्मचर्यं ततः पालयन्तु ॥११२॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य के बिना देवाधि देव "ओ३म्" नहीं है, ब्रह्मचर्य रहित देव कुछ नहीं है, तथा ब्रह्मचर्य रूप

अटल नियम को तोड़ने वाली भगवान् की सृष्टि भी नहीं है अतः हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य का पालन करो।

मन्त्रः—ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा
अधिविश्वे समोताः प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं
वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् (अथर्व ११।५।२४)

भ्राजद्ब्रह्मब्रह्मचारी विभर्ति
तस्मिन् देवा विश्वरूपाः सामोताः।
प्राणपानौ व्यानमुत्पादयन्नाद्—
वाचं स्वान्तं हृच्छ्रियं ब्रह्ममेधाम् ॥११३॥

अर्थ ब्रह्मचारी दीप्यमान ज्ञान को धारण करता है। उसमें सर्वविद्या निष्णात देवगण ओत-प्रोत होते हैं अतः वह प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, कान्ति, ज्ञान और मेधा को उत्पन्न करता हुआ (इनकी शक्तियों को प्रकट करता हुआ) दिखाई देता है।

ज्ञानं तेजोद्धानोरविरिवजगति ब्रह्मचारी प्रकाशं
ज्ञानं शक्तिं च भक्ति विकरति सुमतिं जीवनं
जागरंच।
प्राणानांदिव्यशक्तिं स्वहृदयमनसोरद्ध तां चात्मवा-
चोमेधाया वैभवं तज्जनयति विपुला ब्रह्मचर्येण
सिद्धीः ॥११४॥

अर्थ—इन्द्रिय आदि के प्रकाश, वेदज्ञान, ब्रह्मज्ञान, शारीरिक, आत्मिक व मानसिक शक्तियों, भक्ति, उत्तम मेधा, सज्जीवन, जागृति का ब्रह्मचारी प्रकाश पुञ्जधारी सूर्य की भान्ति जगत में फैलाता है। प्राण-अपान-उदान

और समान की दिव्य शक्तियें, अपने मन व हृदय की अलौकिक विभूतियें, अपनी वाणी का अद्भुत सामर्थ्य, मेधा बुद्धि के वैभव व अन्य अनेक प्रकार की सिद्धियें वह ब्रह्मचर्य से ही उत्पन्न करता है ।

प्राणायामप्रयोगेण प्राणान् वशयति व्रती ।
तदायत्तं मनस्तस्माद् हृदये दिव्यशक्तयः ॥११५॥

अर्थ—ब्रह्मचारी प्राणायाम विधि से प्राणों को वश में लाता है, जिससे प्राथाधीन मन (एकाग्र) हो जाता है उसी समय से अलौकिक शक्तियें प्रारम्भ होती हैं ।

मनोहृदययोस्स्थैर्ये मेधायां ज्ञानसंचयः ।
ज्ञानवृद्धौ ततो वाण्यां विलक्षणमुदञ्चता ॥११६॥

अर्थः—मन और हृदय के स्थिर होने पर बुद्धि में ज्ञान का संचय और ज्ञानवृद्धि होने पर वाणी में प्रभावोत्पादक अद्भुत चातुर्य का आविर्भाव होता है ।

वक्तृत्वकौशलेनासौ ज्ञानं स्वीयं तनोत्यलम् ।
तेन प्रभाविता लोकाः सत्यवक्तुर्वशंवदाः ॥११७॥

अर्थः—तब यह वक्तृत्व कौशल से अपने संचित ज्ञान को अप्रनिहत रूप से विस्तृत करता है जिससे प्रभावित हुए हुए मनुष्य उस सत्यवक्ता के आधीन (अनुगामी) हो जाते हैं ।

मन्त्रः—चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ (अथर्व० ११।५।२५)

चक्षु: श्रोत्रं यशोधेहि अतिन्नस्मास्वलौकिकम् ।
रक्तमन्नोदरं रेतः पवित्रं बहुशक्तिदम् ।

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन् ! हम मनुष्यों को देखने व सुनने आदि की दिव्य-शक्ति, पवित्र और अतिबलदायक, यश, रक्त, भोग्य पदार्थ, पेट और वीर्य धारण कराइये ।

ज्ञानेन्द्रियाणि वरदर्शनसिद्धिमन्ति
श्लाघ्यं यशो विपुलसत्वकृदन्नराशिम् ।
शुक्रं च शुद्धरुधरं जठरं बलिष्ठं
वर्णीन्द्र ! देहि जनतेत्यभियाचते त्वाम् ॥११६॥

अर्थ—हे वर्णीन्द्र ! आप हमें अत्युत्तम रूप, रस, स्पर्श आदि की सिद्धिदायक ज्ञानेन्द्रियें, अति उज्ज्वल प्रशंसनीय कीर्ति, बहुबलकारक प्रभूत अन्न, दृढ़वीर्य, पवित्र रक्त और अच्छी प्रकार अन्न पचाने वाला पेट दीजिये । ये वस्तुएँ आप से जनता मांग रही है ।

मन्त्रः—तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य
पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
सस्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्या बहु रोचते ॥
(अथर्व० ११।५।२६)

कांक्षते जनता रुग्ण ब्रह्मचारिणमुज्ज्वलम् ।
तादृशं विपदम्भोधेर्यो निजानुद्धरेद्द्रुतम् ॥१२०॥

अर्थ—साँसारिक शोक दुःख-मग्न रुग्ण जनता ऐसे समुज्ज्वल देदीप्यमान ब्रह्मचारी की इच्छा कर रही है । (अपने बीच में देखना चाहती है) जो उसे महान् संकटों से शीघ्र उबार सके ।

श्रीब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे
तपश्चरंस्तिष्ठति कल्पयन्नु ।
तानीन्द्रियाणि प्रगुणानि कर्त्तुं
श्रुत्वार्तनृणां बहुयाचनां तु ॥१२१॥

अर्थ—दु:खितजनों की चहुँमुखी मांगों को सुनकर पूर्वोक्त चक्षु श्रोत्र आदि समस्त पदार्थों को शक्ति सम्पन्न करने के लिए समर्थ होता हुआ वह ब्रह्मचारी ज्ञान-पृष्ठ (ज्ञान-स्तर) पर तपश्चर्या करने को उद्यत होता है ।

प्रतप्यमानोऽनुसमुद्रतीरं
ज्ञानाम्बुधौ स्नाततर: स बभ्रु: ।
सुपिङ्गलो रम्यवसुन्धरायां
प्ररोचते ब्राह्ममहोऽभिराम: ॥१२२॥

अर्थ:—ज्ञान सागर के तट पर तप करता हुआ ज्ञान-सागर में पारंगत (स्नातक बना हुआ) धारक पोषक गुण-शाली, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान अत एव कान्तिमान् ब्रह्मचारी मनोहारिणी इस वसुन्धरा पर अत्यन्त सुहाता है ।

तरङ्गिण्यास्तीरे क्वचिदमलनीरे परिसरे
गिरे: कान्तारे वा गुरुचरणसेवारतमना: ।
तपोऽलं कुर्वाणो जितकुसुमबाणो व्रतिवर:
परब्रह्मानन्दं निगमविदमन्दं कलयति ॥१२३॥

अर्थ:—कहीं निर्मल जल वाले नदी तट पर, कहीं पर्वत की तलहटी में या पर्वतीय वन में कठोर तप करता हुआ श्रद्धेय आचार्य-वर्य की सेवा-सुश्रूषा में दत्त-चित्त, काम-

वासनाओं का दमन करके वेद-विद्या निष्णात श्रेष्ठ ब्रह्म-चारी इष्ट ब्रह्म के अमन्द आनन्द का उपभोग करता है।

स ब्रह्मचारी नहि केवलं तपो
वाक्कायजं किन्तु करोति मानसम्।
तपोऽभिषेक्तुं तपतामुं वरं
ज्ञानार्णवस्सत्यमुपैति हर्षदः ॥१२४॥

अर्थः—वह ब्रह्मचारी केवल वाणी और शरीर सम्बन्धी तप ही नहीं अपितु मानस तप भी करता है। तब तपस्वियों में श्रेष्ठ इस ब्रह्मचारी का अभिषेक करने के लिए सचमुच आनन्ददायी ज्ञानसमुद्र वेद उपस्थित होता है।

ततोऽनिशं वर्षति वर्णिवारिदः
सवेदनादं जनताम्बरे लसन्।
निपीय तद्बोधजलं ह्यलं जनो—
विमुच्यते भोगजरोगसंकटात् ॥१२५॥

अर्थः—चमकता हुआ वह ब्रह्मचारी रूपी मेघ जनता-रूपी अन्तरिक्ष में वेद गर्जना करता हुआ रात-दिन अमृत की वर्षा करता रहता है। मनुष्य उस ज्ञान जल को यथेष्ट पीकर भोग-जन्य रोग दुःखों से मुक्त हो जाते हैं।

अतः परं श्रेष्ठब्रह्मचारिणां निदर्शनानि

× × ×

श्रेष्ठ ब्रह्मचारियों के उदाहरण

ओ३माचार्यो जगति सुमहान् ब्रह्मचारी वेरण्यः
सृष्टेर्गोप्ता सकलजनको ब्रह्मचर्यप्रणेता।
जीवेभ्योऽसौ निगमवचसा ब्रह्मचर्योपदेशं
पूर्वं-चक्रे मह ऋषिगणैः स्वीकृतो विस्तृतोऽयम् ।१२६।

अर्थः—"ओ३म्" बहुत बड़ा ब्रह्मचारी है (ब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा है) उसने आदि सृष्टि में जीवों को वेदवचनों द्वारा ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। अतः ब्रह्मचर्य का प्रणयन कर्त्ता होने से वह जगत में सर्वश्रेष्ठ आचार्य है। (ब्रह्मचर्य के प्रताप से वह अकेला ही) वस्तुमात्र का जनक और ब्रह्माण्ड का रक्षक बना हुआ है। महर्षिगणों इसी ब्रह्मचर्य के उपदेशक को स्वीकारा और फैलाया।

योगीन्द्रो भुवि शङ्करोवरगुरुः प्रागंब्रह्मचर्यावने
तत्सिद्ध्या मदनस्त्रिलोकविजयी भस्मीकृतस्तेन सः।
कामारिर्विदितोऽभवत्तदनु स संस्मर्यते योगिभि
र्योगारम्भ विधौविनिर्मलहृदा भक्त्या सदाचार्यवत्॥१२७

अर्थः—ब्रह्मचर्य के रक्षण में श्रेष्ठ गुरु योगिराज भगवान् शंकर इस भूमण्डल में (कामदेव के शत्रु) कामारि नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। उन्होंने ब्रह्मचर्य की सिद्धि से त्रिलोकविजयी कामदेव को भस्म कर दिया था, तभी से वे योगियों द्वारा आज तक योगारम्भ करने के समय अति निर्मल पवित्र हृदय और श्रद्धाभाव से आचार्य की न्याईं स्मरण किये जा रहे हैं।

व्यभूषयन्नार्यवसुन्धरां पुरा
धुरन्धराः श्री सनकः सनन्दनः
सनत्कुमारो व्रतिनां सनातन—
स्सनातनोमिन्द्रवशंवदाः सदा ॥१२८॥

अर्थः—ब्रह्मचारियों में धुरन्धर ब्रह्मचारी श्री सनक, सनन्दन सनत्कुमार और सनातन नामक ऋषि प्रतिक्षरण सनातन ओ३म् के वशंवद हुए। किसी समय इस आर्यभूमि को अलंकृत कर रहे थे।

चतुर्भिरेतैश्चतुरैरियत्तप-
स्तपस्विभिस्तच्चरितं सुदुश्चरम्।
यमोज्वरात्तस्तु जरां जरा गता
सुरासुरास्तच्चरणं सिषेविरे ॥१२९॥

अर्थः—इन चारों तपस्वियों ने इतना कठोर तप किया कि जिससे भयभीत हो मृत्यु को तो ज्वर चढ़ गया, बुढ़ापा जीर्ण-शीर्ण हो गया, तथा देव और असुर उनके चरणों में आ गिरे।

स्मरस्मरँस्ताँश्चपलं पलायित—
स्त्रिलोकलोकाः प्रविलोक्य कम्पिताः।
व्रतीश्वराणामुपदेशलेशत—
स्तदा बभूवुर्व्रतिनस्सहस्रशः ॥ १३० ॥

अर्थ—कामदेव उनका स्मरण करते ही एकदम भागा और त्रिभुवन निवासी जन उन्हें देखते ही कम्पायमान हो गये। उस समय इन वर्णीन्द्रों के थोड़े से उपदेश से ही हजारों की संख्या में ब्रह्मचारी तैयार हुए।

शुक्राचार्योऽजनि सुविदितो ब्रह्मचर्योपदेष्टा
स्वीयाञ्छिष्यानकृतदनुजान् विश्वजिष्णू-
ञ्जिताक्षान् ।
देवत्वं तानसुरनिवहान्नीतवान ब्रह्मवाग्भ-
स्सञ्जीवन्या मृतकसदृशाञ्जीवयञ्जीवनेशः
॥ १३१ ॥

अर्थ—शुक्राचार्य ब्रह्मचर्य के प्रसिद्ध उपदेष्टा हुए हैं। उन्होंने अपने दानव शिष्यों को विश्व-विजयी एवं जितेन्द्रिय बनाया, जीवन के निर्माता बनकर उन्होंने ब्रह्मचर्य संजीवनी बूटी से मृतक सदृश उन असुरों में प्राण फूंकते हुए वेद-वाणी द्वारा उनको देव बनाया।

विजितरुचिरकामं सत्यकामं प्रकामं
परम परशुरामं ब्रह्मचर्याभिरामम्
द्विजसरसि जहंसं विप्रवंशावतंसं
प्रमदनृपतिकालं को न वेदर्षिबालम् ॥१३२॥

अर्थ—मोहक विषयों को जीतने वाले, सत्य वस्तु कामना को चाहने वाले, उत्तम ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त, द्विज-कमल के हंस, ब्राह्मण वंश के भूषण, मदमत्त राजाओं के कालस्वरूप, परम कान्ति [illegible] ऋषि बालक परशुराम को कौन नहीं जानता।

अनुपम बलशाली ब्रह्मचा[illegible]शुमाली
विमलहृदयसत्वः प्र[illegible]तशास्त्रास्त्रतत्त्वः।
रचित दुरितलीलान् क्षत्रियान् दुष्टशीलान्
व्यधित मुहुरशेषानेकलोनामशेषान ॥१३३॥

अर्थ—उस अनुपम बलशाली, पवित्र हृदय और बुद्धि वाले, शस्त्र-अस्त्र के मर्मज्ञ ब्रह्मचारी-रूपी सूर्य ने अकेले ही पाप लीलाओं के रचयिता दुष्ट क्षत्रियों को अनेक बार मृत्यु के घाट उतारा।

दत्तात्रेयो ब्रह्मचर्यावतारो—
यावज्जीवं ब्रह्मचर्यं जुगोप।
वैराग्यश्रीशोभमानो महात्मा
ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मचर्येणलेभे ॥ १३४ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य के अवतार रूप महात्मा दत्तात्रेय ने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य को निभाया और वैराग्यरूपी लक्ष्मी से सजकर ब्रह्मचर्य से ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया।

अगण्यताखण्डसुवर्णकुण्डलः
प्रचण्डतेजोजितसूर्यमण्डलः।
असौ मुनीन्द्रः शुकदेव उज्ज्वलः
सुब्रह्मचर्यस्य हि दर्पणोऽमलः ॥१३५॥

अर्थ—मुनीन्द्र शुकदेव अखण्ड ब्रह्मचारियों में भूषण स्वरूप गिने गये, वे ब्रह्मचर्य के प्रचण्ड तेज से सूर्य तेज को फीका कर रहे थे, निःसन्देह ये ब्रह्मचर्य के एक निर्मल और चमकते हुए आदर्श थे।

कृतारम्भा रम्भा विजयकृतदम्भा शुकमुनेः
सुनेत्राम्भोजान्तैर्हृदयमतिकान्तैर्वशयितुम्।
यदा नालं जेतुं जितमकरकेतुं व्रतिवरं
परं लज्जोद्विग्ना विपदुदधिमग्ना समभवत्।१३६।

अर्थ—विजय करने का दम्भ करनेवाली देवाङ्गना रम्भा अप्सरा ने अपने मनोहर नेत्र कटाक्षों से शुक मुनि के हृदय को वश में करने के लिए आडम्बर रचना आरम्भ किया, परन्तु जब काम-विजयी उस व्रतिवर को वह न जीत सकी तो लज्जा से अति विह्वल होकर दुःख सागर में डूब गई।

भारद्वाजः श्रुतियुगभवो ब्रह्मचारी प्रकाण्डो—
यस्स्वीयायुस्त्रयमगमयद् ब्रह्मचर्ये प्रसन्नः।
वेदाभ्यासे विभुवरशिवोपासने वीर्यगोप्ता
लक्षर्षिभ्यो व्यतरदतुलं ब्रह्मचर्योपदेशम् ॥१३७॥

अर्थः—वैदिककाल में भारद्वाज एक प्रकाण्ड ब्रह्मचारी हुए हैं, जिन्होने अपने तीन जन्म वेदाभ्यास और सर्वव्यापक शिव की उपासना में प्रसन्नता पूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करते हुए व्यतीत किये। वीर्य के रक्षक बनकर उन्होंने लाखों ऋषियों को ब्रह्मचर्य का अनुपम उपदेश दिया।

मृत्योः काले परमपितरं प्रार्थयामास यत्स-
ब्रह्मंस्तुर्ये जनुषि हि पुनर्ब्रह्मचर्येण वेदान्।
अध्येष्येऽलं प्रखरतपसा त्वत्पदं लाघुकोऽहं
मह्यं देहीत्यमलमनसा मानवं जन्म याचे ॥१३८॥

अर्थः—उन्होंने मरण समय में परमपिता ब्रह्म से प्रार्थना की कि:—हे ब्रह्मन्! तेरे मोक्षपद का अभिलाषी मैं चौथे जन्म में भी कठोर तप से ब्रह्मचर्य-पूर्वक वेदों को पूर्ण रूप से पढ़ूँगा। शुद्ध मन से मैं पुनः मनुष्य जन्म ही

आप से मांगता हूँ वह मुझे प्रदान कीजिये।

दोर्भ्यां येन विलंघितो जलनिधिर्दग्धा च लङ्कापुरी
लङ्केन्द्रश्चकितीकृतः स्वमहसा सीता च सन्देशिता
तत्सन्देशहरेण रामनृमणिः सन्तोषितोऽयं बली
रक्षःकुञ्जरकेसरी व्रतिवरो वज्राङ्गधृन्मारुतिः ॥१३६॥

अर्थः—जिन्होंने बाहुओं से समुद्र को लांघा, लंकापुरा को जला दिया, अपने तेज व पराक्रम से लङ्कापति रावण को चकित किया, सीता को राम का सन्देश दिया और सीता का सन्देश लाकर जिन्होंने नरेन्द्र श्रीरामचन्द्र को सन्तुष्ट किया, ऐसे राक्षसरूप हाथियों में बबर शेर वज्र-अङ्गधारी अति बलवान्, श्रेष्ठ ब्रह्मचारी मरुत्-पुत्र श्री हनुमान् थे।

वेदाङ्गवेदनिपुणः पवनात्मजोऽसौ
सुग्रीवराजसचिवोऽप्रतिवार्यवीर्यः।
श्रीरामचन्द्रनृपलक्ष्मणप्राणगोप्ता
सीतापतेः प्रमुखभक्त इह प्रसिद्धः ॥१४०॥

अर्थः—वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत, राजा सुग्रीव के मन्त्री, अत्यन्त साहसी, प्रजापति श्रीराम और लक्ष्मण के प्राणरक्षक, माता सीता के पति श्रीराम के अनन्य भक्त, पवनपुत्र हनुमान् इस लोक में विख्यात हो गये हैं।

श्रीशान्तनोर्नरपतेस्तनयस्स भीष्मो—
गंगात्मजो निखिलवेदविदां वरिष्ठः।

देवव्रतः पितृमनीषितपूरणार्थं
यो ब्रह्मचर्यमधृतामरणं व्रतीन्द्रः ॥१४१॥

अर्थः—जिन्होंने पिता की इच्छा को पूर्ण करने के लिये जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण किया, वे राजा शान्तनु के पुत्र, गंगा माता के बेटे, वेदवक्ताओं के भूषण, देवव्रत नामक, व्रतियों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारी श्री भीष्मपितामह थे।

प्राणान्निरुध्य शयितं ह्यधिवाणशय्यं
पप्रच्छ कृष्णभगवान्स पितामहं तम्।
कष्टं विनाऽयि भगवन्! कथमत्र शेते?
स ब्रह्मचर्यमहिमेति जगाद सत्यम् ॥१४२॥

अर्थः—प्राणों को रोककर बाणों की शय्या पर सोते हुये उन भीष्म पितामह से भगवान् श्रीकृष्ण ने पूछाः—अयि भगवन्! आप विना कष्ट के कैसे इस बाण-शय्या पर सो रहे हैं? तब उन्होंने केवल यही उत्तर दिया किः—सचमुच यह सब ब्रह्मचर्य की ही महिमा है।

शिवगुरुतनयेन्द्रः श्रीसतीनन्दनोऽसौ
निखिलनिगमवेत्ता शंकरो ब्रह्मचारी।
सकलजनुरखण्डं ब्रह्मचर्यं बभार
स्वकनिगमसुधर्मोद्धारसंलग्नचेताः ॥१४३॥

अर्थः—शिवगुरु के सुपुत्र, माता श्री सती के बेटे, सकल शास्त्रों के ज्ञाता, अपने शास्त्रों में प्रतिपादित उत्तम

धर्म के उद्धार में दत्त-चित्त श्री ब्रह्मचारी शंकराचार्य ने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य को धारण किया।

विद्वत्प्रकाण्डवरपण्डितमण्डनं तं
विद्यावतारमहिलामथ भारतीं ताम्।
शास्त्रार्थसंगर उभौ स विजित्य शिष्यौ
चक्रे यतो यतिरिह स्वमतं वितेने ॥१४४॥

अर्थः—प्रकाण्ड पण्डितों में पण्डितमणि श्री मण्डन-मिश्र, तथा साक्षात् सरस्वती सी परम विदुषी महिला भारती को शास्त्रार्थ महारथी श्री शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ-समर में जीत कर दोनों को शिष्य बना लिया। जिस से उस संन्यासी ने अपने अद्वैत मत को इस आर्यावर्त में पूर्ण रूप से फैलाया।

संस्कारकारकमुखात्स्वविवाहकाले
यः सावधान इति शब्दमहो! निशम्य।
सद्यः पलायत ततस्त्वरयातिदूरं
गोदावरीतटमितश्च तपश्चचार ॥१४५॥

अर्थः—अहो! जो अपने विवाह के समय पुरोहित के मुख से "सावधान" शब्द सुनते ही एकदम बड़ी शीघ्रता से गोदावरी नदी के किनारे बहुत दूर भाग गये और वहाँ तप करने लगे।

आदित्यब्रह्मचारी रघुकुलतिलकाङ्घ्रौ रतो रामदासो
राष्ट्रोद्धाराय सोऽयं शिवनृपमणिमुत्साहयामास भक्तम्।

निष्णातो राजनीत्यां गुरुवरवचनैर्यावनाक्रांतदुर्गान्-
जित्वा राष्ट्राधिपत्यं व्यधित दृढबलोऽतो महाराष्ट्रराजः
॥१४६॥

अर्थः—वे रघुकुल के भूषण श्री रामचन्द्र की अर्चना में लीन, आदित्य ब्रह्मचारी श्री रामदास थे। उन्होंने राष्ट्र के उद्धार के लिये अपने भक्त श्री छत्रपति शिवाजी के उत्साह को बढ़ाया। गुरु उपदेशों से राजनीति में निष्णात बनकर दृढ़सेनाधारी महाराष्ट्रराज ने मुसलमानों के चंगुल में फँसे हुये दुर्गों को जीतकर उन पर महाराष्ट्र का आधि-पत्य स्थापित किया।

अपाठयद्यो निजपाठशाला—
प्रविष्टशिष्यानृषिभक्तरत्नम्।
आर्षप्रणालीमनुगम्य पाठान्
निरस्य नूत्नं क्रममार्षचुञ्चुः ॥१४७॥

अर्थः—आर्ष विद्या में विख्यात, ऋषियों के श्रेष्ठ भक्त दण्डी विरजानन्द अपनी पाठशाला में आये हुये शिष्यों को नवीन प्रणाली का निरादर करके आर्ष प्रणाली के अनुसार पाठ पढ़ाया करते थे।

योऽनेकराजेन्द्रविनम्रमौलि—
रत्नावलीरंजितपादपद्मः।
ज्ञानांशुसम्बोधितशिष्यचेतः—
पङ्केरुहोऽराजत पद्मिनीन्द्रः ॥१४८॥

अर्थः—इनके चरण कमल अनेक राजाओं के झुके

मुकुटों की रत्न-प्रभा से शोभित रहते थे। ये सूर्य की तरह ज्ञान-किरणों से शिष्यों के हृदय-कमलों को विकसित किया करते थे।

अनन्तशब्दार्णवपारदृश्वा
विश्वागमानामृतसारवेत्ता।
भेत्ता प्रतिद्वन्द्विविवादिवाचा—
माचार्य आचारविधौ य आसीत् ॥१४६॥

अर्थः—दण्डी जी अनन्त शब्दसागर के पारगामी, सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों के सत्य तत्त्व के वेत्ता, प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों के वाग्जाल के भेत्ता एवं आचार शास्त्रों के मानो आचार्य थे।

—(वियोगिनी-सुन्दरी वा वृत्तम्)

सकलार्यगुरोर्गुरूत्तमो—
विरजानन्दयतिव्रतीश्वरः।
तपसा बृहता स दीपितो—
निखिलायुर्व्रतमुज्ज्वलं दधौ ॥१५०॥

अर्थः—सकल आर्यों के आचार्य दयानन्द जीके आदर्श गुरु ब्रह्मचारी संन्यासी विरजानन्द जी ने बृहत् तप से देदीप्यमान होकर आजीवन उज्ज्वल ब्रह्मचर्य धारण किया।

विलीनानां प्रायो व्यधितनिगमानां य उदयं
चलं धर्मैश्वर्यं पुनरपि पदं पूर्वमनयत्।
स्वतन्त्रत्वस्येमं भुवि विमलभावं प्रथितवान्
दयानन्दं वन्दे किमिव न तमानन्दजनकम् ॥१५१॥

अर्थः—प्रायः लुप्त हुये वेदों का जिन्होंने उदय किया, अस्थिर बने हुये धर्म के ऐश्वर्य को फिर भी पूर्वपद पर प्रतिष्ठापित किया और संसार में स्वातन्त्र्य के शुद्ध भावों को फैलाया, उन आनन्ददायक ऋषिवर दयानन्द को मैं क्यों न प्रणाम करूँ !

त्रिलोकीलक्ष्मीरुत्पथयितुमलं नैव यमहो !
प्रहारोद्युक्तानां विविधमतभाजामपि नृणाम् ।
कुलादुग्रा भीतिर्विमुखमकरोन्न श्रुतिपथाद्
यमूर्व्यां स स्वामी परमपदकामी किरतु शम् ।१५२॥

अर्थः—अहा ! त्रिभुवन की राजलक्ष्मी भी जिन्हें कुमार्ग की ओर ले जाने के लिये समर्थ नहीं हुई तथा मारने के लिये तैयार हुये नाना मतवादी जनों के समूह का तीव्र भय भी जिनको वेदमार्ग से विमुख करने के लिए शक्तिमान् न हुआ, वे मोक्षपद के अभिलाषी महर्षि दयानन्द भूलोक में सुख की वर्षा करें ।

आदित्यब्रह्मचारी गुणिगणगणनास्वग्रगण्यो वरेण्यो
वाग्मी वश्येन्द्रियाणामवनिसुरकुलोत्तंस आर्यावतंसः ।
नानापाखण्डजालं जगति कुपथगं धर्मविद्यो न्यषेधत्
सन्मार्गस्योपदेष्टा जयति स जगदानन्दनो वन्दनीयः
॥१५३॥

अर्थः—जो अखण्ड आदित्य ब्रह्मचारी, गुणवानों की गणना में अग्रगण्य, उत्तम वक्ता, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ; ब्राह्मण कुल के भूषण तथा आर्यों के अलंकार थे, और

जिन्होंने कुमार्ग की ओर जाने वाले नाना पाखण्डियों के दलों को विदलित किया, वे जगत के आनन्ददाता तथा सब के वन्दनीय महर्षि दयानन्द विजय पा रहे हैं।

आदित्यब्रह्मचर्याभिधविमलमहःपुञ्जतो ध्वान्तवृन्दं
भिन्दानो वाममार्गाचरणनिशिचरानन्दरात्रीनिहन्ता।
पुण्यात्माम्भोजकान्तो निगममतवनोल्लासने चेतनांशुः
संसारोद्बोधनोऽयं विलसतु हृदये श्रीदयानन्दभानुः।
॥१५४॥

अर्थ—आदित्य ब्रह्मचर्य रूपी निर्मल तेज पुञ्ज से पापान्धकार को नष्ट करते हुए, वेद विरुद्ध मार्ग में विचरने वाले निशाचरों को आनन्द देने वाली रात्री का विनाश करने वाले, वैदिकमत रूपी उपवन को बुद्धि रूपी किरणों से प्रफुल्ल बनाने वाले और संसार को मोह निद्रा से जगाने वाले स्वामी दयानन्द मुनि रूपी सूर्य-भगवान् हमारे हृदयों को ज्ञान से प्रकाशित बनावें।

ब्रह्मर्षिश्रीयोगिराजोपदेशान्—
नित्यानन्दो ब्रह्मचारी महात्मा।
जातः स्वामी सत्यदेवोऽपि वाग्मी
सत्सिद्धान्तं वैदिकं तेनतुस्तौ ॥१५५॥

अर्थः—ब्रह्मर्षि योगिराट् दयानन्द सरस्वती के उपदेशों के प्रभाव से महात्मा व कुशल वक्ता श्री स्वामी नित्यानन्द जी एवं स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक दोनों आजन्म ब्रह्मचारी रहे और वैदिक सत्य सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे।

आचार्यो यो दर्शनानां समेषां
विद्वानात्मानन्दनामा यतीशः।
यावज्जीवं ब्रह्मचर्योज्ज्वलोऽयं
ख्यातो योगे काव्यकर्त्तुर्गुरुर्मे ॥१५६॥

अर्थः—ब्रह्मविद्या में मुझ काव्यप्रणेता के गुरु, नव्य-प्राच्य-बौद्ध-जन समस्त दर्शनों के आचार्य, धुरन्धर विद्वान् अनेक संन्यासियों के गुरु श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य से अत्यन्त ख्याति पा रहे हैं।

व्रतिवरकुलतीर्थो वेदतीर्थः स शास्त्री
निगममतबुधेन्द्रः ख्यातसत्कीर्तिचन्द्रः।
विलसति नरदेवो राष्ट्रसेवाप्रवीणः
सदसि चतुरवक्ता ब्रह्मचारी धुरीणः ॥१५७॥

अर्थः—उत्तम ब्रह्मचारियों के तीर्थ रूपी वैदिक सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पण्डित, चन्द्रतुल्य निर्मल यशशाली, राष्ट्रसेवा में प्रवीण और राज्य समिति के कुशल वक्ता, आजन्म ब्रह्मचारी श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ आर्यों में चमक रहे हैं।

आचार्यः श्री व्रतानन्दो यतीन्द्रो ब्रह्मचारिराट्।
ब्रह्मचर्याश्रमं दुर्गे चित्तौडेऽस्थापयद्वरम् ॥१५८॥

अर्थः—अखिल भारतीय संन्यासी मण्डल के प्रधान, ब्रह्मचारियों में देदीप्यमान श्री आचार्य व्रतानन्द जी ने चित्तौड़ दुर्ग के समीप अपूर्व ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल को स्थापित किया।

ब्रह्मविद् ब्रह्मदत्तोऽपि ब्रह्मचारी महाबुधः।
भाष्ये योऽकृत सद्व्याख्यां दयानन्दस्य याजुषे ॥१५६॥

अर्थः—दिग्गज पण्डित, वेदवेत्ता श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु भी अखण्ड ब्रह्मचारी रह ब्रह्मर्षि दयानन्द के याजुष भाष्य के दश अध्यायों की उत्तम व्याख्या कर चुके हैं।

आर्षशिक्षाप्रणाल्या यो ब्रह्मचर्याश्रमं व्यधात्।
तार्यः शंकरदेवोऽसौ ब्रह्मचारी विदांवरः ॥१६०॥

अर्थः—जिन्होंने आर्ष शिक्षा प्रणाली से ब्रह्मचर्याश्रम साङ्गवेदविद्यालय नौनेर को स्थापित किया, वे पण्डित मण्डल के भूषण, आर्यशिरोमणि ब्रह्मचारी शंकरदेव जी हैं।

आचार्यो भगवान्देवो ब्रह्मचारी तपोधनः।
ब्रह्मचर्यप्रचारार्थं सततं तनुते श्रमम् ॥१६१॥

अर्थः—तपस्वियों में श्लाघनीय आचार्य श्री भगवान् देव जी स्वयं अखण्ड ब्रह्मचारी बनकर ब्रह्मचर्य-प्रचार के लिये निरन्तर परिश्रम कर रहे हैं।

व्रतीश्वरो माणिकरावनायकः
परन्तपो मल्लगुरुर्महाबली।
समग्रशस्त्रास्त्रसुशिक्षणेभृशं
विचक्षणो राजति राजपत्तने ॥१६२॥

अर्थः—पहलवानों के गुरु, अत्यन्त बलशाली, ब्रह्मचर्य के पुञ्ज, शत्रुञ्जय श्री माननीय माणिकराव जी सम्पूर्ण शस्त्र-अस्त्र के शिक्षण में विचक्षण बड़ोदा राज्य में विराजमान हैं।

य: सार्वदेशिकसदार्यसभाप्रधानो—
वाग्मिप्रवीर इह राजगुरुर्धुरेन्द्रः ।
आर्योदयार्थमनिशं विहितावधानः
स ब्रह्मचारिवर एव महार्यनेता ॥१६३॥

अर्थ:—आर्यों की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा के प्रधान, कुशल वक्ता श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री ब्रह्मचारी हैं, अतः एव आर्यों की उन्नति में अनवरत रत रहते हुये आर्यों के महान् नेता पद को अलंकृत कर रहे हैं।

ऋषिवरवरशिष्या ब्रह्मचर्यं चरन्तो—
दिशि दिशि विलसन्तो ब्रह्मचर्यं दिशन्तः ।
निखिलभुवनलोकध्वान्तदुःखं हरन्तः
परमपदसुखाब्धिं देवदेवं भजन्तु ॥१६४॥

अर्थ:—जगद् गुरु ब्रह्मर्षि दयानन्द के अनेक अग्रगण्य शिष्य ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक समस्त भूमण्डल में विराजमान होकर ब्रह्मचर्य का उपदेश करें और समस्त भूलोक के अज्ञान जन्य अन्धकार रूप दुःख का हरण कर परम धाम सुख-सागर देवाधिदेव ओ३म् को भजें।

* इति ब्रह्मर्षिदयानन्ददिग्विजयकारस्य महाकवि—
श्रीपण्डितमेधाव्रताचार्यस्य पवित्रकृति—
'ब्रह्मचर्यमहत्त्वं' नाम काव्यं
४ ६ १
वेदरसब्रह्ममितश्लोकलसितं
समाप्तिमगमत ॥*